ग्वालियर राज्य
में
प्राचीन मूर्तिकला

लेखक
श्री हरिहरनिवास द्विवेदी
एम० ए०, एल-एल बी०
मुरार (ग्वालियर)

प्रकाशक

विद्यामन्दिर-प्रकाशन

मुरार (ग्वालियर)

प्रथम संस्करण

मूल्य १०)

मुद्रक

आलीजाह दरबार प्रेस, ग्वालियर।

प्रस्तावना

मेरी पुस्तक 'ग्वालियर राज्य में मूर्तिकला' का प्रारंभिक अंश 'ग्वालियर में प्राचीन मूर्तिकला' के नाम से पाठकों को भेंट कर रहा हूँ। इसमें ग्वालियर की मूर्तिकला का स्वर्णकाल अर्थात् सन् ६०१ से १४०० ई० तक के समय की मूर्ति-कला का विवेचन सम्मिलित नहीं है। इस समय में इस प्रदेश पर वैस-मौखरी, प्रतिहार, परमार और कच्छपघातों का राज्य रहा और इसी समय के अन्त में राजपूतों ने इस प्रदेश के गौरव की रक्षा के प्रयास में इसकी भूमि का चप्पा चप्पा अपने रक्त से रँग दिया। इस बीच यहाँ के उत्कीर्णक की कला भी अपने पूर्ण विकास को प्राप्त हो गई और उसने ऐसी कला कृतियाँ प्रस्तुत कीं जो इस प्रदेश के लिये ही अत्यन्त गौरव की वस्तु नहीं वरन् भारत के भाल को संसार की अन्य संस्कृतियों के समक्ष भी उन्नत करती हैं। न इस पुस्तक में तोमर वंश की उन गौरवशाली कृतियों का उल्लेख है जिनका एक उदाहरण ग्वालियर गढ की विशाल जैन प्रतिमाओं में मिलता है। इसी तोमर वंश में ग्वालियर के मान, महाराज मानसिंह हुए जिनका कला-प्रेम आदर्श था, परन्तु जो आज भी हमारे द्वारा पुनः प्रकाशित किये जाने की बाट में है। और न इस पुस्तक में उसके बाद की मूर्तिकला का उल्लेख है, जो मराठों के राज्य में शिन्दे वंश के शासनकाल में प्रस्फुटित हुई।

यह सब मेरी पुस्तक 'ग्वालियर की मूर्तिकला' में है, जो छह मास पूर्व लिखी जा चुकी है। ऐसी पुस्तक का प्रकाशन अत्यन्त व्ययसाध्य है, और जो ग्वालियर के गौरव के अभिमानियों के सामर्थ्य के बाहर नहीं है।

मूर्तिकला के विवेचन में इतिहास की पृष्ठभूमि का दिग्दर्शन कराना आवश्यक हो जाता है। ऐसा करते समय मैंने अपनी पुस्तक 'ग्वालियर के अभिलेख' तथा अन्य इतिहासज्ञ विद्वानों की कृतियों से सहायता ली है। इनमें से श्री जयचन्द्रजी विद्यालंकार की 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' तथा स्वर्गीय डॉ० श्री० काशीप्रसादजी जायसवाल की 'अन्धकारयुगीन भारत' विशेष उल्लेखनीय हैं। अन्य पुस्तकों का उल्लेख यथास्थान पाद-टिप्पणियों में है। इस प्रदेश के प्रान्तीय इतिहास के विषय में विशेष नवीन खोज का अंश भी इस पुस्तक के अगले अंश में ही है, यद्यपि गुप्तकाल तक के प्रादेशिक इतिहास के ज्ञान में भी इससे पुस्तक द्वारा कुछ वृद्धि हुई है।

यह अंश लेख के रूप में 'विक्रम-स्मृति-ग्रंथ' में छपा है और यह उसीके ओवर-रन किए हुए रिप्रिण्टस् हैं। अतएव न तो टाइप का ही चयन हो सका न अन्य बातों का। मेरे अनेक समर्थ कृपालुओं एवं मित्रों के मेरे ऊपर इस पुस्तक के लिखने में अनेक उपकार हैं, परन्तु मैं उनके आभार प्रदर्शन को पूरी पुस्तक के मुद्रण के लिए सुरक्षित रखता हूँ।

प्रारम्भिक

कला राजनीतिक सीमाओं को नहीं मानती, अतएव ग्वालियर-राज्य की प्राचीन मूर्तिकला से हमारा तात्पर्य किसी ग्वालियरी शैली विशेष से नहीं है। ग्वालियर की प्राचीन मूर्तिकला से तात्पर्य यही है कि हम उन मूर्तियों का विवेचन करें जो ग्वालियर-राज्य के अन्तर्गत आनेवाले विभिन्न स्थलों पर प्राप्त हुई हैं। यह विवेचन इस कारण से और भी सम्भव है कि इस राज्य की वर्तमान सीमाओं में प्राचीन भारत के कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल रहे हैं। कुछ विशिष्ठ शैलियों को छोड़कर ग्वालियर की मूर्तिकला भारत की मूर्तिकला की प्रतिनिधि है। अतः यह कहा जा सकता है कि इस राज्य की प्राचीन मूर्तियों का विवेचन बहुत अंश तक प्राचीन भारत की मूर्तिकला का विवेचन है।

इस राज्य की प्राचीन मूर्तिकला पर प्रकाश डालने के लिए प्रेरित करनेवाली मूल वृत्ति इस भूमि से लेखक का ममत्व तो है ही, परन्तु केवल यही प्रधान कारण नहीं है। समस्त भारत की मूर्तिकला के विवेचन के समय एक प्रदेश विशेष की कला-सम्पत्ति के साथ पूर्ण न्याय नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार के प्रादेशिक अध्ययन द्वारा सार्वदेशिक महत्त्व की बातों के विवेचन के साथ ही प्रादेशिक महत्त्व की वस्तुओं पर भी प्रकाश-पात करने को स्थान मिलता है। ग्वालियर-राज्य की कला-सम्पत्ति पर प्रकाश डालने का एक कारण यह भी है कि बाहर के विद्वानों ने यहाँ की कला-सम्पत्ति को अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखा है और साथ ही उनमें अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। प्राचीन मूर्तिकला के एकाधिक इतिहासों में उदयगिरि गुहा को भूपाल-राज्य में लिखा देखकर आश्चर्य होता है*। उदयगिरि को जितना चाहिए उतना महत्त्व भी नहीं दिया जाता। चित्रकला के इतिहासों में बाग (अमझरा जिला) की सुन्दरतम कृतियों को अनुपस्थित पाया। साथ ही अनेक सुन्दरतम मूर्तियाँ उनकी दृष्टि में नहीं आई हैं। अनेक मूर्तियों के काल एवं विषय के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ हुई हैं†। अस्तु।

---

* स्मिथ: हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन, चित्र ४६। कुमारस्वामी : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृष्ठ ७७ तथा चित्र नं० ७७।

† बेसनगर की तेलिन (महिषमर्दिनी) की मूर्ति को स्मिथ ने पूर्व मौर्यकालीन लिखा है। (देखिए—स्मिथ, वही, पृष्ठ ३०)। डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी मणिभद्र यक्ष की मूर्ति को पूर्व-मौर्यकालीन बतलाते हैं। (हिन्दू सिविलिजेशन, पृष्ठ ३१५)।

मानव-हृदय में व्याप्त सौन्दर्य-भावना को किसी उचित माध्यम द्वारा साकार रूप प्रदान करने की प्रवृत्ति ही कला को जन्म देती है। यह प्रवृत्ति आदिम मानव में भी पाई जाती थी। उसने अपने आराध्य एवं प्रिय का जहाँ वाणी द्वारा गान किया वहाँ उसको अधिक स्थायी माध्यम प्रस्तर, मृत्तिका अथवा धातु द्वारा रूप देने का भी प्रयास किया। इसी प्रवृत्ति ने मूर्तियों का निर्माण कराया। सिन्ध और पंजाब में मोहन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा में प्राग्-इतिहासकालीन मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, परन्तु हमारे राज्य का मूर्तिकला का इतिहास मौर्यकाल के कुछ पहले से अथवा पूर्व से पूर्व शैशुनाक काल से प्रारंभ होता है।

इस स्थल पर उन माध्यमों पर भी विचार कर लेना उचित है जिनको आधार बना कर मूर्तिकार अपनी कला को साकार रूप देता है। इनमें प्रधान प्रस्तर-खण्ड हैं। शिलाओं को कुरेद कर अथवा शिलाखंडों को गढ़कर मूर्तियों का निर्माण करते हैं, जिनका आकार ग्वालियर-गढ़ की पर्वताकार मूर्तियों से लेकर अत्यन्त छोटी मूर्तियों तक है। कुछ मूर्तियाँ चारों ओर से बनी हैं, कुछ का केवल सामना बनाया जाता है। कुछ पत्थर पर चित्रों के समान उभरी हुई (अर्धचित्र) कुरेद कर बनाली जाती हैं। दूसरा आधार मिट्टी है। मिट्टी के ठीकरों पर उभरी हुई मूर्तियाँ बनाने की कला भारत में बहुत पुरानी है। प्रागैतिहासिक स्थलों पर भी ये प्राप्त होती हैं। इस राज्य में भी बहुत प्राचीन मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं और पवाया पर जो राशि प्राप्त हुई है वह इस कला के चरम विकास का प्रमाण है। तीसरा साधन धातु है। प्राचीनकाल की धातु-मूर्तियाँ राज्य में अत्यन्त कम प्राप्त हुई हैं, जो मिली हैं वे महत्त्वहीन हैं। परन्तु पुरातत्त्व-विभाग के संग्रहालय में बाहर से कुछ अच्छी धातु मूर्तियाँ संग्रहीत हुई हैं।

मूर्तियों के विषय और प्रयोजन भी अनेक रहे हैं। मूर्ति-निर्माण की प्रधान प्रेरणा धार्मिक पूजा-स्थलों से मिली है। इस कारण से बहुसंख्यक मूर्तियाँ किसी न किसी सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। विजयगाथाओं अथवा धार्मिक दानों को उत्कीर्ण किए हुए प्रस्तर-स्तंभों पर निर्मित मूर्तियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं, परन्तु ये स्तम्भ बहुधा मन्दिरों से सम्बन्धित कर दिए जाते थे। मालव-वीर यशोधर्मन्-विष्णुवर्द्धन् के विजय-स्तंभों के पास पाए गए शिव-मन्दिर के अवशेष इसे सिद्ध करते हैं। स्मारक एवं सती स्तम्भों पर धार्मिक दृश्य अंकित रहते ही हैं। वास्तव में भारत जैसे धर्मप्राण देश में प्राचीनकाल में प्रत्येक कला धर्मानुगामिनी होकर ही रही है। ऐसी मूर्तियाँ बहुत कम प्राप्त हुई हैं जो किसी सम्प्रदाय अथवा धर्म से सम्बन्धित न हों; परन्तु इनका अभाव नहीं है। यहाँ तक कि मदिरा-पान एवं आखेट तक के दृश्यों को अंकित करनेवाली मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं।

हमारी बहुतसी सांस्कृतिक विरासत अनेकों सहस्राब्दियों के चक्र के नीचे विलीन हो गई हैं। काल के क्रूर हाथों से पत्थर भी नहीं बच सका। परन्तु काल के साथ साथ मानव ने भी हमारी मूर्तिकला-भाण्डार के विनाश में पूरा हाथ बटाया है।‡ मूर्तिकला का सबसे बड़ा दुश्मन धार्मिक असहिष्णु मानव रहा है। मूर्ति-कला को आश्रय देनेवाले भवनों से नवीन भवन-निर्माण के लिए सुलभ सामग्री खोजनेवाले व्यक्तियों ने भी इस कला को ध्वस्त किया है। इन सब विनाशों से बची हुई जो मूर्तिकला-सम्पत्ति राज्य के विभिन्न स्थानों में प्राप्त हुई है उसका संक्षिप्त विवेचन करने का प्रयास आगे किया गया है। हमने अपने इस विवरण को गुप्तकाल तक लाकर समाप्त कर दिया है।

इस विवेचन को हमने कुछ कालों में बाँट लिया है। यह काल कुछ मूर्तियों के तथा शैलियों के आधार पर हैं। राजनीतिक इतिहास भी उससे गुंथा रहता ही है, अतः अत्यन्त संक्षेप में पहले सम्बन्धित प्रदेश का राजनीतिक इतिहास देकर प्रधान मूर्तियों के काल, शैली, कला आदि का विवरण दिया है।

---

‡ कनिंघम ने आ० स० ई० भाग २०, पृष्ठ १०३ में दुबकुण्ड (श्योपुर) की मूर्तियों के विषय में अत्यन्त आश्चर्य-पूर्ण बात लिखी है कि वहाँ की जैन मूर्तियों को मराठों ने तोड़ा है। यदि मराठे मूर्तियाँ तोड़ने की इच्छा रखते तो चन्देरी, ग्वालियर गढ़ आदि बहुत से स्थलों पर जैन धर्म के अवशेष भी न मिलते। दूसरे, हिन्दू धर्म में अन्य धर्मों के देवमन्दिरों को नष्ट करने की भावना का प्रचार कभी नहीं किया गया। यह विचार अत्यन्त भ्रांतिपूर्ण तथा असत्य है।

प्राग्-मौर्य काल

—ई० पू० ६०० [?] से ई० पू० ३०० तक—

ईसा से प्राय: ६०० वर्ष पूर्व उज्जैन पर महाप्रतापी प्रद्योत नामक राजा राज्य करता था, जो अपने प्रताप एवं वीरता के कारण चण्ड-प्रद्योत कहलाता था। वत्सदेश का राजा उदयन इसका दामाद हुआ। यह वही उदयन है जिसकी कथाएँ उज्जैन के ग्रामवृद्ध अनेक शताब्दियों के पश्चात् भी सुनाते रहते थे।* मगध का राजा उस समय शिशुनाक वंशी अजातशत्रु था। उदयन के पश्चात् अवन्ती का राजा पालक हुआ। पालक के प्रजा-पीड़न से दु:खी होकर उज्जयिनी की जनता ने उसे राज्य-च्युत करके विशाखयूप को राजा बनाया। अजातशत्रु के पश्चात् मगध का राजा दर्शक हुआ और उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अजउदयी हुआ। इस अजउदयी ने अवन्ति के राजा विशाखयूप को जीतकर उसे अपना करद बनाया और विशाखयूप की मृत्यु के पश्चात् अवन्ती के राज्य की बागडोर सीधे अपने हाथ में ले ली। इसी अजउदयी ने मगध में पाटलिपुत्र नगर की स्थापना की। अजउदयी के पश्चात् नन्दिवर्धन गद्दी पर बैठा।

इस प्रकार भारतवर्ष के इतिहास में मगध-साम्राज्य की स्थापना हुई, जिसकी पूर्वी राजधानी पाटलिपुत्र थी और पश्चिमी उज्जयिनी। उज्जयिनी और पाटलिपुत्र के राज-मार्ग पर प्राचीन विदिशा नगरी स्थित थी। उज्जयिनी ने इतने उथल-पुथल देखे हैं कि वहाँ प्राचीनकाल के अवशेष नहीं मिलते। विदिशा नगरी भी प्राचीन काल में कम महत्त्वपूर्ण नहीं थी। यह अनेक राजमार्गों पर स्थित होने के कारण व्यापारिक, सामरिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र रही है। अत: यह कोई आश्चर्य नहीं है कि हमारी प्राचीन मूर्तिकला के इतिहास के प्रारंभिक अध्याय विदिशा के खण्डहरों से ही प्रारम्भ हों।

---

* प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् ॥पूर्वमेघ ३२॥

अथवा

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जन्हे। हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः॥
अत्रोद्भ्रांतः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पादित्यागन्तून्रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः॥ पूर्वमेघ ३५॥

जहाँ पहले प्राचीन विदिशा नगरी बसी हुई थी उस स्थान के एक कोने में आज बेस नामक ग्राम बसा है। इसके अवशेषों में प्राचीनतम काल की कला-कृतियाँ दबी पड़ी हैं।

सन् १८७४ में एलेक्जेण्डर कनिंघम, डायरेक्टर जनरल ऑफ आक्यर्लॉजी ने विदिशा के ध्वंसावशेषों पर पड़ी हुई मूर्तियों का अन्वेषण किया था। उनकी दृष्टि में हमारी प्राचीनतम एक मूर्ति आई थी और उसका वर्णन उन्होंने आक्यर्लॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के भाग १०, पृष्ठ ४४ पर किया है। यह एक विशालकाय स्त्री-मूर्ति है (चित्र १) जो ६ फीट ७ इञ्च ऊँची है। यह मूर्ति दो भागों में टूट गई है और हाथों का पता नहीं चल सका। सबसे प्रथम इस मूर्ति का केश-विन्यास अपनी विशिष्टता के कारण आकर्षित करता है जो अत्यन्त भारी और प्रभावशाली है। ज्ञात यह होता है कि कनक-खचित रहे है या डोरों के साथ बालों को सजाया गया है जिससे कि एक मुण्डासा सा बन गया है, जिसने सम्पूर्ण सिर को पीछे गले तक ढक लिया है। पीछे बालों की दो चौड़ी गुंथी हुई चोटियाँ कमर के नीचे तक लटक रही हैं। कानों में भारी बाले लटक रहे हैं। उनका भारीपन केश-विन्यास के भारीपन से मेल खाता हुआ है। गले में अनेक मालाएँ पड़ी हुई हैं, जिनमें एक बहुत मोटी है और स्तनों के बीच में से पेट के ऊपरी भाग तक लटक रही है। अधोवस्त्र और अलंकरण भी कम विचित्र नहीं हैं। कनिंघम ने शरीर के ऊपरी भाग में 'जाकेट' पहने होना बतलाया है। अधोवस्त्र एक साड़ी है जो घुटनों के नीचे तक आती है। साड़ी के नीचे एक वस्त्र और पहना हुआ है जो पैर के पंजों तक पहुँचता है। गले के समान कटि पर भी अनेक प्रकार के अलंकार तथा झालरें हैं। साड़ी की सामने की चुन्नट भी विशिष्ट प्रकार की है। पैरों की बनावट भद्दी है।

यह मूर्ति कलकत्ता-संग्रहालय में चली गई है। सौभाग्य से भेलसे के प्राचीन किले के पास एक खेत में बिलकुल इसी प्रकार की एक मूर्ति (चित्र २) हाल ही और प्राप्त हुई है। जिस स्थान पर यह मूर्ति प्राप्त हुई है वह इसका मूल स्थान नहीं है। ज्ञात होता है कि पास ही बेसनगर से किसी व्यक्ति द्वारा यह खण्ड इस स्थान पर ले आया गया। यद्यपि वह टूटी हुई है और उसका केवल छाती के ऊपर का भाग ही प्राप्त हुआ है, परन्तु फिर भी वह हमारी अत्यन्त बहुमूल्य कला-सम्पत्ति है। बेसनगर की बड़ी स्त्री मूर्ति के राज्य की सीमाओं के बाहर कलकत्ता संग्रहालय में प्रवास करने के पश्चात् हमारे पास इतना प्राचीन कुछ भी नहीं था।

इन मूर्तियों के काल के विषय में बहुत मतभेद है। इनकी शैली को देखते हुए इनकी निम्नलिखित विशेषताएँ दिखती हैं:—

(१) इनकी विशालता,
(२) चारों ओर से कोर कर बनाने की रीति,
(३) यथातथ्य चित्रण की ओर प्रवृत्ति,
(४) पैरों की बनावट, और
(५) बगलों और पीछे के भाग की उपेक्षा कर सामना अधिक विस्तार से बनाने की प्रवृत्ति।

इसी श्रेणी और शैली की अनेक मूर्तियाँ भारतवर्ष में प्राप्त हुई हैं। (१) परखम (मथुरा) की मूर्ति (चित्र ३) (२) बरोदा (मथुरा) की मूर्ति (३) मथुरा के पास की मनसादेवी की मूर्ति (४) मथुरा की एक और स्त्री-मूर्ति। (५) पटना के पास पुरुष-मूर्ति (६) पटना के पास प्राप्त दूसरी पुरुष-मूर्ति (७) कोसम में प्राप्त मूर्ति-खण्ड।

इनके निर्माण-काल के विषय में विद्वानों में बहुत वाद-विवाद हुए हैं। विद्वान् इनके विषयों पर भी एकमत नहीं है। अनेक विद्वान् इन्हें यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियाँ बतलाकर मौर्यकालीन सिद्ध करते हैं; कुछ विद्वान् इन्हें देवकुलों में रखी हुई राजा-रानियों की प्रतिमाएँ मानते हैं।*

*** इन मूर्तियों के विषय में जो विवाद हुआ है उसके लिए देखिए—(१) भारतीय इतिहास की रूपरेखा, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ५५८-५६२; ज० वि० ओ० रि० सो०, भाग ५, पृष्ठ ५१२-५६५; इ० ए० १९१९ पृष्ठ २५-२६; मॉडर्न रिव्यू, अक्टूबर १९१९; ज० रा० ए० सो० १९२०, पृष्ठ १५४-१५६ तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण) भाग १, पृष्ठ ४०–८२।**

राजवंशों की मूर्तियों के देवकुलों का अस्तित्व भास के 'प्रतिमा' नामक नाटक से ज्ञात होता है। उस समय यह प्रथा थी कि प्रत्येक राजवंश का अपना देवकुल होता था जिसमें मरने के पश्चात् राजा की मूर्ति स्थापित की जाती थी और कालान्तर में उक्त देवकुल में अनेक मूर्तियाँ एकत्रित हो जाती थीं§। यह अनुमान किया गया है कि जो मूर्तियाँ पटना के पास मिली हैं वे शैशुनाक राजाओं के देवकुल की थीं। उन पर उत्कीर्ण लेखों के अनुसार उन्हें अजउदयिन, नन्दिवर्धन और वर्तनन्दि की मूर्तियाँ बतलाया गया है तथा परखम की मूर्ति को अजातशत्रु की मूर्ति कहा है। इन शैशुनाक सम्राटों का अवन्ति से राजनीतिक सम्बन्ध बतलाया जा चुका है, अतएव इन विद्वानों ने बेसनगर की ये मूर्तियाँ भी उसी काल की मानी हैं। यक्षवादी विद्वानों ने इन मूर्तियों के लेखों को यक्षों के नामों के रूप में पढ़ा है। ई० पू० प्रथम शताब्दी की मणिभद्र यक्ष की मूर्ति पवाया में मिली है। उसपर उत्कीर्ण अभिलेख के कारण उसके काल के विषय में कोई शंका नहीं है। उसकी शैली से इन मूर्तियों की तुलना की जाए तो वे एक ही परम्परा की ज्ञात होंगी। अत: अधिक सम्भव यही है कि उक्त मूर्तियाँ यक्षों की ही हों। मथुरा की मूर्ति के सम्बन्ध में 'देवकुलवादी' विद्वान् यह अनुमान लगाते हैं कि वह पटना के पास से यहाँ लाई गई हैं। परन्तु बेसनगर में ये दो स्त्री मूर्तियाँ ही मिली हैं। इन्हें क्या समझें? हम मानने को तैयार नहीं कि यह दोनों स्त्री मूर्ति भी पटना के देवकुल की रानियों की मूर्तियाँ हैं जो किसी प्रकार विदिशा में ले आई गईं। ये मूर्तियाँ या तो उस समय के यक्ष-पूजा का प्रमाण हैं* या फिर केवल अलंकरण के रूप में किसी प्रासाद को सुशोभित करने के लिए बनाई गई थीं।

इनके काल के विषय में भी दो मत हैं। यदि इन्हें शैशुनाकवंशीय प्रतिमाएँ मानें तो इनका समय ई० पू० ६०० तक पहुँच जाता है। परन्तु यदि इन्हें यक्षिणियों की मूर्तियाँ माना जाए अथवा स्वतंत्र मूर्तियाँ भी माना जाए तो भी इनको पूर्व मौर्यकालीन तो माना ही जा सकता है।

दीदारगंज में प्राप्त चामर-ग्राहिणी की मूर्ति (चित्र ४) की चमकदार ओप को देखते हुए उसे निश्चय ही मौर्यकालीन कहा जा सकता है। उसके साथ इन मूर्तियों की तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि इनकी कला कम विकसित है, इसलिए ये उससे पूर्व की हैं।

आनन्द कुमारस्वामी ने इन मूर्तियों को मौर्यकालीन ही बतलाया है। वे दीदारगंज की प्रतिमा को बेसनगर की प्रतिमा से अधिक विकसित† मानते हैं; परन्तु वे इसका कारण यह बतलाते हैं कि मौर्यकाल में राज-दरबारी और लोक की कला पृथक् रही है। ये स्थूल एवं अविकसित मूर्तियाँ लोक-कला की उदाहरण हैं और ओपदार कृतियाँ अशोक की राजदरबार की कृतियाँ हैं।‡ इस कल्पना को अन्य विद्वानों ने भी प्रतिध्वनित किया है।⁑ परन्तु यह क्लिष्ट कल्पना की आवश्यकता केवल राजकुलवाद के विरोध में उत्पन्न हुई है। सीधी और सच्चीसी बात तो यह है कि ये मूर्तियाँ चामर-ग्राहिणी के पूर्वकाल की हैं, और ऐसे पत्थर पर बनी हैं जिस पर ओप नहीं हो सकता तथा ऐसे काल में बनी हैं जब पत्थर पर ओप करना हमारे मूर्तिकार नहीं जानते थे।

इनकी यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति, विशालता एवं चारों ओर कोर कर बनाने की रीति को कुछविद्वानों ने प्राचीनता का द्योतक मान लिया है। इन्हीं कारणों से बेसनगर की विशालकाय महिषमर्दिनी की गुप्तकालीन मूर्ति को उन्होंने उक्त मूर्तियों का समकालीन मान लिया। यहाँ तक कि डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी बेसनगर की उक्त महिषमर्दिनी की मूर्ति के साथ साथ पवाया की मणिभद्र यक्ष की मूर्ति को भी ईसवी सन् के ३०० वर्ष पूर्व में गिन जाते हैं। कला काल और समय के खाँचे नहीं मानती। कलाकार किसी भी अन्य देश या काल की शैली से प्रभावित हो सकता है। इस प्रकार के ढालकर मूर्तियों के पक्के नियम काल का विवेचन निभ्रान्ति रूप से नहीं किया जा सकता।

---

§ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, नवीन संस्करण, भाग १, पृष्ठ ९५–१०८।

* मौर्यों के बहुत पूर्व यक्षपूजा प्रचलित थी, इसके लिए देखिए आनन्द कुमारस्वामी का 'यक्ष' नामक लेख (Smithsonian Miscellaneous Collections, Vol. 80, No. 6. में प्रकाशित)।

† हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृष्ठ १७। ‡ वही, पृष्ठ १८।

⁑ डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी: हिन्दू सिविलिजेशन, पृष्ठ ३१९। ⁂ वही पृष्ठ ३८।

मौर्य काल

—ई० पू० ३०० से ई० पू० १५० तक—

चन्द्रगुप्त ने मगध के सम्राट् महापद्मनन्द को मारकर उत्तर भारत में विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसने ग्रीक विजेता अलिकसुन्दर की विशाल सेना को देखा था और उसके विश्वविजय के स्वप्नोंसे भी परिचय प्राप्त किया था। उसके प्रबल प्रताप से टकराकर देवपुत्र नामधारी ग्रीक विजेता के सेनापति सिल्यूकिद की तलवार भी श्रीहीन होकर भारत-वीरों के चरणों में झुक गई थी। हेलेना अथवा कार्नेलिया के विवाह की कथा में कल्पना का मिश्रण भले ही हो परन्तु मेगस्थनीज के राजदूतत्त्व की घटना तो ऐतिहासिक तथ्य ही है। भारत के सम्राटों के राजदरबारों में अपनी विनम्र मैत्री दिखाने की इस परम्परा का प्रमाण अन्तलिकित (एण्टिअल्कीड्स) के समय तक मिलता है। जो हो, परन्तु ग्रीक और भारतीय संस्कृतियों का मिलन मौर्यकाल से प्रारम्भ हो गया था, यह प्रमाणित है। इन 'यवनों' से भारत ने विजित के रूप में नहीं परन्तु विजेता के रूप में सम्पर्क प्रारम्भ किया था। अतएव भारतीय कलाकारों ने ग्रीक तथा अन्य पश्चिमी देशों की कला की नकल की होगी, यह सोचना समीचीन नहीं है। परन्तु साथ ही यह भी नहीं सोचा जा सकता कि भारतीय कलाकार ने पश्चिमी कला के सम्पर्क में आकर भी उसके सौन्दर्य को ग्रहण करने से एकदम इन्कार कर दिया होगा। वास्तव में इस सम्पर्क का परिणाम यह हुआ कि भारतीय कलाकार ने उन कला-कृतियों को आत्मसात् किया है जो उसे भारतीय रुचि के अनुकूल दिखीं। ऐसी दशा में अनेक विद्वानों ने अशोक के द्वारा बाहर के कलाकार बुलाने की कल्पना की है*, वह अत्यन्त अप्राकृतिक एवं भ्रान्त है।

पाटलिपुत्र-पुरवराधीश्वर सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य तथा बिन्दुसार अमित्रधात के समय में भी उज्जयिनी एवं विदिशा को गौरव प्राप्त था, इसके प्रमाण मौजूद हैं। जब अशोक केवल युवराज थे, तब वे राज-प्रतिनिधि के रूप में उज्जयिनी में रहे थे और विदिशा की श्रेष्ठि-दुहिता 'देवी' से उनके संघमित्रा नामक कन्या एवं महेन्द्र तथा उज्जैनीय नामक दो पुत्र थे।‡ इन वैश्या महारानी की स्मृति जनश्रुति ने 'वैश्या-टेकरी' के नाम में अब तक जीवित रखी है।

---

* मार्शलः ए गाइड टू साँची, पृष्ठ १०।

‡ वही, पृष्ठ ८ तथा महावंश।

प्रद्योत, उदयन और अजातशत्रु के समय में शाक्य मुनि गौतम बुद्ध ने अहिंसामय धर्म का विस्तार उत्तर भारत में किया था। कलिंग-विजय में जो अगणित नरबलि देनी पड़ी, उसने अशोक का हृदय बौद्ध-धर्म की ओर आकर्षित किया। वह बौद्ध धर्म का प्रबल प्रचारक बन गया। उसने उसे अपने साम्राज्य का राजधर्म बनाया और भारत के बाहर भी प्रचार किया। कहते हैं कि उन्होंने ८४,००० बौद्ध स्तूप बनवाए‡ और अपने आदेशों से युक्त अनेक स्तम्भ खड़े किए। इन स्तूपों के चारों ओर वेदिका (रेलिंग) होती थी। यह वेदिक (बाड़) या तो काठ की होती थी या पत्थर की। उन पर बुद्ध के जीवन-सम्बन्धी अनेक चित्र अंकित किए जाते थे, इन दृश्यों के विषय में एक बात स्मरणीय है; बुद्ध भगवान् ने अपना चित्र अंकन करने का निषेध कर दिया था। अतएव इन पर बुद्ध की मूर्ति नहीं है।

चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक के महलों का वर्णन हमें ग्रीक राजदूत और फायहान द्वारा लिखा हुआ मिला है। उनकी विशालता से वे अत्यधिक प्रभावित हुए थे और वे तत्कालीन अन्य विदेशी राजधानियों के राजमहलों से भी श्रेष्ठ थे, ऐसा मेगस्थनीज ने लिखा है। फायहान तो उनकी महानता को देखते हुए उन्हें मानवकृत मानने में भी सन्देह करता है और उन्हें देवयोनि द्वारा निर्मित मानता है।‡ इससे यह प्रकट होता है कि उस काल में स्थापत्य कला तथा उसकी संगिनि मूर्तिकला अत्यन्त समुन्नत दशा में थी, और साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि भारत को मौर्यकाल में परदेशी कारीगर बुलाने की आवश्यकता भी न पड़ी होगी जैसाकि मार्शल आदि का मत है।

मौर्यकालीन कारीगर पत्थर पर एक अत्यन्त चमकदार ओप करने की रीति जानते थे जो उस काल की कला की एक अत्यन्त निजी विशेषता थी। मूर्ति या स्तंभ बनाकर वे उसे इतना चिकना कर देते थे कि हाथ फिसलता था। यह ओप उस काल की मूर्तियों की अचूक पहिचान है। यद्यपि पत्थर पर ओप आगे भी हुआ परन्तु इस अशोकीय ओप की बराबरी न की जा सकी। साँची के तोरणों पर इसका आभास मिलता है और मध्यकाल में तो अनेक मूर्तियों पर चिकनाहट की गई है, परन्तु इसकी अपनी निजी विशेषता है। इसमें चुनार का पत्थर अधिक सहायक हुआ है।

मौर्य सम्राटों का विदिशा और उज्जैन से राजनीतिक सम्बन्ध था, इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। अतएव यहाँ भी मौर्यकाल की मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण प्राप्त हुए हैं और आगे भी प्राप्त होने की आशा है। विद्वानों ने यह अनुमान किया है कि पत्थरों पर उभरी हुई मूर्तियाँ (अर्ध-चित्र) तथा अलंकरण हाथी दाँत पर बनी हुई कलाकृतियों का अनुकरण करने की चेष्टा से बने हैं। ये हाथीदाँत के कारीगर विदिशा में रहते थे, इसका प्रमाण भी मिलता है। साँची के दक्षिण तोरण के बाएँ खम्बे पर विदिशा के दन्तकारों के दान का उल्लेख है।* भरहुत की वेदिका पर विदिशा के फल्गुदेव आदि के दान-सम्बन्धी चार लेख हैं।†

ग्वालियर-राज्य की सीमाओं में प्राप्त मौर्यकालीन कला-कृतियों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(१) विदिशा के स्तूप की बाड़ के अवशेष,

(२) उदयगिरि के बौद्ध अवशेष तथा कुछ अन्य स्तम्भ-शीर्ष, तथा

(३) कुछ मृण्मूर्तियाँ, गुरिए, हाथीदाँत की वस्तुएँ तथा उज्जैन की कुम्हार-टेकरी में प्राप्त मृत्तिका-पात्र आदि।

उज्जैन में वैश्या-टेकरी के उत्खनन के फलस्वरूप जिन स्तूपों का पता लगा है वे अपनी विशालता एवं विशिष्ट स्थापत्य कलाकौशल की दृष्टि से अशोककालीन स्तूपों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं; परन्तु उनके चारों ओर या तो कोई वेदिका (बाड़) थी ही नहीं और यदि थी तो वह लकड़ी की बनी हुई थी। इस प्रकार यहाँ पर मूर्तिकला का कोई उदाहरण प्राप्त न हो सका। यह एक विचित्र संयोग है कि बेसनगर (विदिशा) के पास हमें एक स्तूप की बाड़ के कुछ अंश प्राप्त हुए हैं; परन्तु वहाँ स्तूप का पता नहीं लगा। ज्ञात यह होता है कि स्तूप की ईंटें तथा बाड़ के कुछ अंश कोई मकान बनाने-

---

‡ **फायहान : यात्रा-विवरण, अध्याय ५८।**

‡ **वही।**

* **मार्शल तथा फुशेः मानूमेण्टस ऑफ साँची, तीसरा भाग।**

† **बरुआ : भरहुत, पृष्ठ ४१ तथा ए गाइड टु दि स्कल्पचर्स इन इण्डियन म्यूजियम भाग १, पृष्ठ ८५।**

वाला ले गया और सौभाग्य से बाड़ का कुछ अंश हमें प्राप्त हो सका। सन् १८७४ में सबसे पहले कनिंघम ने इन्हें देखा था। उसने लिखा है, "बेसनगर ग्राम के बाहर पूर्व की ओर मुझे एक बाड़ के कुछ अंश मिले, जो कभी बौद्ध स्तूप को घेरे हुए थी। ....चारों अभिलेखयुक्त हैं जिनमें अशोककालीन लिपि में दाताओं के छोटे छोटे लेख हैं। इस कारण से इस स्तूप की तिथि ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दी के मध्य के पश्चात् की नहीं मानी जा सकती।‡"

इन लेखों की लिपि के कारण तो यह वेदिका अशोककालीन ज्ञात होती ही है, साथ ही यदि इनकी तुलना भरहुत एवं साँची की उभरी हुई मूर्तियों से की जाए तो इनका उन दोनों से पूर्वकालीन होना सिद्ध होगा। भरहुत एवं साँची में जो जातकों तथा बुद्ध के जीवन सम्बन्धी दृश्य दिखाए गए हैं वे अधिक विकसित एवं अधिक रूढ़िबद्ध हैं। बेसनगर की बाड़ इस दिशा में पूर्वतम प्रयास ज्ञात होती है। सम्भव यह है कि विदिशा के नागरिकों ने साँची को अपना प्रधान पूजा-स्थल बनाया, उसके पूर्व विदिशा के अत्यन्त निकट का यह छोटासा स्तूप बनाया गया होगा। इसके पश्चात् उदयगिरि पर कुछ निर्माण हुआ और अन्त में साँची पर। बुद्ध द्वारा उनकी मूर्ति-अंकन-निषेध का पालन इस बाड़ की मूर्तियों में किया गया है। प्राचीन बाड़ों पर बुद्ध का स्वयं का चित्रण (१) सिंहासन (२) बोधिवृक्ष (३) त्रिरत्न, तथा (४) स्तूप द्वारा किया गया है। इनमें त्रिरत्न को छोड़कर शेष तीनों प्रतीक बेसनगर की बाड़ में मौजूद हैं। साँची के स्तूप की बाड़ों में भी सारी प्रकृति--जड़ और चेतन--बुद्ध की आराधना में तत्पर दिखलाई है परन्तु उत्कीर्णक की छैनी बुद्ध-विग्रह के अंकन के निषेध की मर्यादा में बँधी ही रही।

कला की दृष्टि से बेसनगर की बाड़ के यह अर्धचित्र साँची और भरहुत के पूर्वगामी हैं, यह ऊपर कहा जा चुका है। दाताओं की असमर्थता के कारण भी उनमें विशालता एवं अनेकरूपता नहीं है। बाड़ का केवल कुछ अंश ही प्राप्त हुआ है और कोई तोरण द्वार भी नहीं मिला है। इस कारण से इसमें साँची या भरहुत की सी न तो प्रचुरता है और न कला की परिपक्वता अथवा विकास। परन्तु साँची और भरहुत की पूर्वगामिनी होने के कारण इसकी कला का महत्त्व अवश्य बहुत अधिक है।

कनिघम ने इस बाड़ के उष्णीष (Coping Stone) का एक खण्ड, एक स्तम्भ और दो सूची (तकिए) के पत्थर (rail bars) देखे थे। उसके पश्चात् अब एक उष्णीष का खंड, एक स्तम्भ का खंड तथा तीन सूचियों के पत्थर और मिल गए हैं। इस प्रकार अब दो उष्णीष के खंड, दो स्तम्भ-खंड तथा पाँच सूचियों के प्रस्तर प्राप्त हैं। यह सब गूजरीमहल संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

उष्णीष-प्रस्तर के खंड ११ इंच ऊँचे और ११ इंच मोटे हैं (चित्र ५)। बड़ा टुकड़ा ७ फीट ४ इंच लम्बा है और छोटा टुकड़ा लम्बाई में इससे प्राय: आधा है। इनके भीतरी ओर हाथी और घोडों का समारोह अंकित है। प्रत्येक हाथी के सिर पर बुद्ध-चिह्न की पिटारी रखी हुई है। हाथी के पीछे एक पदाति है जो ध्वजा या चमर लिए हुए है; उसके पीछे एक अश्वारोही है। अश्वारोही के पीछे फिर एक पदाति है। इस प्रकार इन दोनों खण्डों में १३ पदाति, ६ घोड़े और ६ हाथी हैं।

बाहरी भाग में उष्णीष-प्रस्तर-खण्डों का ऊपरी गोल हिस्सा अर्धचित्रों के ऊपर निकला हुआ दो इंच चौड़ी छज्जीसी बना देता है जिससे इनकी रक्षा होती रहे। बड़े तथा छोटे दोनों टुकड़ों में दो स्तूपों की पूजा का अंकन है (चित्र ६)। गोमूत्रिका* के आकार में फैलाई गई एक पद्म-बेल द्वारा १० खन बना दिए गए हैं। इस बेल में यत्र-तत्र पूर्ण विकसित, अर्धविकसित एवं अविकसित कमल-पुष्प तथा पत्ते बने हुए हैं। दाहिनी ओर के पहले खन में एक हाथी है, दूसरे और नवें खन में दो-दो गायक हैं, जिनमें से एक मृदंग बजा रहा है। तीसरे और चौथे खनों में एक स्त्री और पुरुष हैं। स्त्री भरा हुआ थाल लिए है और पुरुष के हाथ में ध्वजा है। इस प्रकार की ध्वजाएँ बौद्ध स्तूप पर टँगी हुई भरहुत में भी दिखाई गई हैं और इसी बाड़ के दूसरे टुकड़े में भी हैं। पाँचवें, छठवें, सातवें और आठवें खन में प्रत्येक में एक एक स्त्री है जो अपने दोनों हाथों में भरे हुए थाल लिए है। दसवें खन में एक स्तूप है जिसके दाहिनी ओर एक स्त्री है। इस स्तूप में ऊपर का छत्र नहीं है।

---

‡ कनिंघम आ० स० ई०, भाग १०, पृष्ठ ३८।

* इस शब्द को हमने उसी अर्थ में प्रयुक्त किया जिसमें राय कृष्णदासजी ने अपनी 'भारतीय मूर्तिकला' में किया है।

छोटे वेष्टन-प्रस्तर-खण्ड में बड़े खण्डों के समान पद्म-बेल द्वारा पाँच खन बतलाए गए हैं। पहले खन में बुद्ध-चिह्न की पिटारी सिर पर रखे हाथी है। चौथे खन में बोधिवृक्ष है, जिसके दोनों ओर स्त्री और पुरुष हैं। पाँचवें खन में, जिसमें स्तूप है, दाहिनी ओर उपासिका खड़ी है। दूसरे खन में दो व्यक्ति हैं, जिसमें से एक भरा हुआ थाल लिए है। दूसरा ध्वजा लिए है। तीसरे खन में एक स्त्री और एक पुरुष है जो गायन-वादन कर रहे हैं।

बड़े खम्भों में बोधिवृक्ष की पूजा दिखाई गई है। इस दृश्य (चित्र ७) का अंकन बहुत अकुशल हाथों द्वारा किया गया है और अर्धचित्रों के अत्यन्त अविकसित रूप का परिचायक है। मूर्तिकार बोधिवृक्ष और नौ उपासकों का संश्लिष्ट चित्र बतलाने में असफल रहा है। पहली पंक्ति में बोधिवृक्ष बना है, फिर नीचे तीन पंक्ति में तीन तीन उपासक हैं। अन्तिम पंक्ति के उपासकों का इस समय केवल सिर का कुछ भाग शेष रह गया है। स्तम्भ के छोटे टुकड़े पर अंकन अधिक रुचिर है। इसके एक ओर संगीत का दृश्य दिखाया गया है। ऊपर एक सिंहासन है। आठ स्त्रियाँ विविध वाद्य बजा रही हैं। बीच में एक दीपक जल रहा है। इसमें वीणा, मुरली, मृदंग आदि वाद्य स्पष्ट दिखाई देते हैं।† इसी स्तम्भ-खण्ड के दूसरी ओर नीचे-ऊपर दो खन हैं। ऊपर के खन में वन का दृश्य है। चार मृग और दो मोरें अत्यन्त सुन्दर रूप में बनी हुई हैं। ऊपर का कुछ भाग टूट गया है। नीचे के खन में दो घोड़ों के रथ में एक राजपुरुष दिखाया गया है। एक पारिषद छत्र लिए हुए है और दूसरा चामर। रथ के नीचे की ओर दो व्यक्तियों के सिर से दिखाई देते हैं।

पाँच सूची प्रस्तरों में से चार में सुन्दर एवं विविध प्रकार के फुल्ल कमल हैं। एक में बोधिवृक्ष के दोनों ओर दो उपासक दिखाए गए हैं।

इन अर्धचित्रों में उस समय के वेश-भूषा तथा सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है।

पुरुषों के सिर पर भारी साफासा बँधा रहता था जिसमें सामने और पीछे गुमटीसी उठी रहती थीं। यह भारी-भरकम शिरोभूषा युक्त एक सिर गूजरी-महल संग्रहालय में रखा हुआ है। यदि इस शिरोभूषा को शुंगकालीन यक्ष की शिरोभूषा से तुलना करें तो ज्ञात होगा कि यह भारी साफा उस काल तक अधिक सरल हो गया था। गुमटियाँ गायब हो चली हैं। छोटे खंभे में राज-पुरुष के साथ जो दो पारिषद हैं उनके ऐसे साफे नहीं हैं। अतएव यह ज्ञात होता है कि इस प्रकार का साफा समाज में विशिष्ट स्थिति का प्रमाण है। पुरुष कानों में भी भारी आभरण पहने दिखाए गए हैं। स्त्रियों के केश-विन्यास भी विशेष प्रकार के हैं। सिर के चारों ओर गोल चक्कर के ऊपर गोल टोपसा है। नीचे के बाल कहीं कहीं गर्दन तक भी आए हैं। पुरुषों के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं हैं। केवल कमर के नीचे धोती बँधी हुई है। सामने पटली है और धोती प्रायः घुटने के नीचे तक है। गले से पेट के ऊपर तक आनेवाली मालाएँ हैं। हाथों में चूड़े हैं। स्त्रियाँ भी छाती और पेट पर कोई वस्त्र पहने दिखाई नहीं देतीं। कानों में भारी वाले, हाथों में चूड़े और गले में मालाएँ हैं। हाथियों पर झूले हैं; परन्तु घोड़ों का साज अधिक अलंकृत है। दो घोड़ों का रथ भी दर्शनीय है। राज-

---

† इस प्रकार के गीत-नृत्य का दृश्य ग्वालियर की सीमाओं में मेरे देखने में तीन स्थानों पर आया है। पहला मौर्यकालीन बेसनगर में प्राप्त बाड़ पर है; दूसरा उदयगिरि में है और तीसरा पवाया में है। यद्यपि चौथा बाग गुहा की भित्तियों पर चित्रित है परन्तु वह इन सबसे भिन्न है। इन सब दृश्यों में अनेक समानताएँ हैं। एक तो यह सब पूर्णतः स्त्रियों की मंडलियाँ हैं, दूसरे हमारे विषय से वाद्य में समानता है। उदयगिरि का स्त्रियों का गीतनृत्य 'जन्म' से सम्बन्धित है, ऐसा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है। उन्होंने लिखा है कि इस उत्सव को 'जातिमह' कहते थे। विशिष्ट जन्म-उत्सव के अंकन में संगीत का प्रदर्शन भारतीय कला की प्राचीन परिपाटी थी। (ना० प्र० प०, सं० २०००, पृष्ठ ४६)। डॉ० अग्रवाल का मत उदयगिरि के दृश्य के सम्बन्ध में ठीक नहीं जँचता। बेसनगर का दृश्य बुद्ध-जन्म से सम्बन्धित हो-सकता है, परन्तु उदयगिरि का दृश्य 'गंगा-यमुना' के जन्म से सम्बन्धित न होकर उनके समुद्र के साथ विवाह से सम्बन्धित है। गंगा-यमुना को समुद्र की पत्नी भी कहा है। पवाया का दृश्य किस 'जातिमह' अथवा विवाह से सम्बन्धित है यह हमें ज्ञात नहीं क्योंकि वह किस मन्दिर का तोरण है यह मालूम नहीं हो सका।

पुरुष स्वयं घोड़ों की बागडोर लिए हैं। भरहुत एवं साँची के रथों के समान ही इस रथ का रूप है। स्त्री-पुरुष धार्मिक उत्सवों तथा समारोहों में समान भाग लेते दिखाए गए हैं।

बेसनगर, भरहुत एवं साँची आदि के इन दृश्यों में बुद्ध-जीवनी तथा जातकों की कथाओं के अंकन हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि बेसनगर के ये दृश्य यद्यपि अधिक सार्थक हैं, परन्तु वे न तो पूर्णत: रूढ़िबद्ध हैं और न किसी कथा या घटना का पूर्ण अंकन करने का प्रयास ही हैं। बुद्ध के जीवन की महान् घटनाएँ इस बाड़ पर अंकित हैं।

(१) **बुद्ध-जन्म**—अलौकिक पुरुषों के जन्म के साथ कमल सदा सम्बन्धित रहा है। इस बाढ़ पर भी तकिए के प्रस्तरों में कमलों के अंकन के साथ ही कमल-बेल का सुन्दर अंकन हुआ है। आगे नृत्य का दृश्य भी बुद्ध-जन्म से सम्बद्ध हो सकता है।

(२) **सिद्धार्थ का राजसी जीवन**—छोटे प्रस्तर-खण्ड पर जो संगीत और वाद्य का दृश्य दिखाया गया है वह महाभिनिष्क्रमण के पूर्व राज-प्रासादों में सिद्धार्थ के सुखी एवं मनोरंजनपूर्ण जीवन का चित्रण हो सकता है। सिद्धार्थ का प्रतीक सिंहासन भी मौजूद है।

(३) **सम्बोधि**—सिद्धार्थ को बोधिवृक्ष के नीचे बुद्धत्व प्राप्त हुआ था, अतएव बौद्ध धर्म में बोधिवृक्ष की पूजा को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। इस बाड़ में तीन स्थान पर बोधिवृक्ष दिखाया गया है।

(४) **मृगदाव में धर्मचक्र-प्रवर्त्तन**—छोटे खंभे के ऊपर जो मृगोंयुक्त वन का दृश्य दिखाया गया है वह सम्भवत: काशी के पास के प्रसिद्ध मृगदाव का चित्रण है। यह ऋषि पतन या मृगदाव बौद्ध साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध में 'निग्रोधमृग-जातक' कथा जातकों में है, * जहाँ बुद्ध ने धर्मचक्र-प्रवर्तन किया था।‡

(५) **बिम्बसार या अजातशत्रु का बुद्ध से मिलना**—इसी दृश्य के नीचे जो राजपुरुष है वह बिम्बसार अथवा अजातशत्रु है। बुद्ध से यह नरेश मिलने गए थे, इस घटना का अंकन साँची भरहुत आदि स्थलों पर भी है। यहाँ पर भी सम्भवत: यह उसी घटना का अंकन है।

(६) **परिनिर्वाण**—अस्सी वर्ष की अवस्था में गौतमबुद्ध ने कुशीनगर के पास दो साल वृक्षों के बीच में प्राण त्याग किया। कुशीनगर के मल्लों ने बहुत समारोह से अन्तिम संस्कार किया और चिता के फूलों को अपने अधिकार में ले लिया। समाचार मिलते ही बुद्ध के अनुयायी सात हिस्सेदार और आ उपस्थित हुए (१) मगध के राजा अजातशत्रु (२) वैशाली के लिच्छवि (३) कपिलवस्तु के शाक्य (४) अल्लकप्प के बुलि (५) रामग्राम के कोलिय (६) बेठदीप का एक ब्राह्मण और (७) पावा के मल्ल। कुशीनगर के मल्ल जब फूल देने में आनाकानी करने लगे तो सातों पक्षों ने कुशीनगर को घेर लिया। यह झगड़ा द्रोण नामक एक ब्राह्मण के हस्तक्षेप से टल सका। द्रोण ने सब अवशेषों को आठ भागों में बाँट दिया और प्रत्येक पक्ष को एक एक भाग दे दिया। उसे वह पात्र मिल गया जिनमें अवशेष रखे हुए थे। सातों पक्ष अवशेष के अपने अपने भाग को लेकर चले गए। इन सब दृश्यों का विशद अंकन भरहुत और साँची में मिलता है। इस बाड़ में तो अन्तिम दृश्य ही दिखाया गया है। वेष्टन के दोनों टुकड़ों पर छह हाथी बुद्ध-चिह्नों की पिटारी सहित दिखाए हैं। सातवाँ हाथी अप्राप्य भाग में नष्ट होगया ज्ञात होता है। साथ के अश्वारोही इन दलों के नायक होंगे। बटवारे के पश्चात् यह अपने अपने भाग के बुद्ध-चिह्न लिए जा रहे हैं।

इन अवशेषों पर स्थान स्थान पर स्तूप बनवाए गए और इस प्रकार बुद्ध के समान ही स्तूपों की पूजा की जाने लगी। इस बाड़ में दो स्तूप बतलाए गए हैं। उष्णीष के बड़े टुकड़े के भीतरी भाग में स्तूप-पूजा का ही समारोह है, परन्तु छोटे टुकड़े का भीतरी भाग कुछ विचित्र है। उसमें बुद्ध-चिह्न की पिटारी लिए हाथी, बोधिवृक्ष और स्तूप सभी दिखाए गए हैं। उपासक भी हैं। इसका स्पष्ट तात्पर्य क्या है, समझ में नहीं आया।

*** भदन्त आनन्द कौसल्यायन कृत 'जातक' अनुवाद, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १९६–२००।**

‡ मजूमदार: गाइड टु सारनाथ, पृष्ठ १२।

कनिघम ने बेसनगर की यात्रा सन् १८७४ में की थी, यह ऊपर लिखा जा चुका है। उस समय उसे इस बाड़ के दक्षिण-पश्चिम में साँची की दिशा में प्राय: एक मील दूर पर उदयगिरि पहाड़ी के दक्षिण में बौद्ध बाड़ और स्तम्भ के अवशेष मिले थे। आश्चर्य है कि आज सिंह-शीर्ष युक्त स्तम्भ के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं है। अतएव आज कनिघम द्वारा उनके वर्णन के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरा साधन नहीं है। वह लिखता है‡ "पहाड़ी (उदयगिरि) के दक्षिणी भाग तथा चोटी पर बहुत से बौद्ध अवशेष हैं। पूर्व में सोम (सुन) पुरा ग्राम के पास मुझे एक बौद्ध बाड़ का एक टूटा खम्भा मिला, जिसका सिरा ८×६ इंच था और जिसके सामने सुपरिचित मुद्राएँ बनी हुई थीं और जिसमें तकिए के प्रस्तरों के घुमावदार छेद बने हुए थे। पास ही मुझे एक पूरा वेष्टन-प्रस्तर मिला जो एक बहुत बड़ी बाड़ का खण्ड था और २ फुट १ इंच लम्बा तथा १ फुट १० इंच चौड़ा था, इसकी मोटाई बीच में ७। इंच थी। इनकी नापें भरहुत के वेष्टन प्रस्तरों से लगभग मिलती जुलती हैं, अतः हम यह अनुमान लगाते हैं कि उदयगिरि में भी कभी बड़ा बौद्ध स्तूप रहा होगा।

"पहाड़ी का चक्कर खाकर दक्षिण की ओर जाने पर मुझे एक इमली के पेड़ के नीचे एक बौद्ध स्तम्भ की चौकी मिली, जो २ फुट ६॥ इंच वर्ग की तथा १ फुट ९॥ इंच ऊँची थी जो साँची और बेसनगर के समान बौद्ध बाड़ से अलंकृत थी। अन्य खण्डों में मुझे कुछ घण्टाकृति खंभे मिले, जो बहुत प्राचीन मन्दिर के अवशेष ज्ञात होते हैं।

"पहाड़ी के ऊपर अनेक स्थानों पर भवनों के चिह्न हैं। गुहाओं के ठीक ऊपर एक चौकोर चबूतरा है जिसके पास मुझे एक बड़े स्तम्भ का एक-सिंहयुक्त घण्टाकृति स्तम्भशीर्ष मिला। पहाड़ी के उत्तरी भाग की ओर, जो प्रायः ३५० फीट ऊँची है, मुझे एक गोल स्तम्भ-खण्ड मिला जो ९ फुट ९ इंच लम्बा था और जिसका व्यास २ फुट ८॥ इंच था और ढाल की ओर २ फीट ७ इंच था। इस स्थल के कुछ ऊपर इस स्तम्भ का भारी सिरा है जो २ फीट ११ इंच वर्ग का है और ६ फुट ५ इंच लम्बा है। यह अब भी अपने मूल स्थान पर ज्ञात होता है, किन्तु पश्चिम की ओर झुक गया है। स्पष्टतः यह बौद्धों का महान् सिंह-स्तम्भ था, जो शताब्दियों तक पहाड़ी के शीर्ष पर खड़ा रहा और आसपास के मीलों दूर के जन-समुदाय का महान् मार्गदर्शक बना रहा। एक दिन उसका विध्वंसक उसे ले जाने के लिए आया, जिसने उसकी नींव खोद डाली और उसे उखाड़ने का प्रयत्न किया। लेकिन चौकोर सिरे के ऊपर से ही स्तम्भ चटक गया और गड्ढे की चट्टान से टकराया जिससे गोल स्तम्भ तो टुकड़े टुकड़े होकर छितर गया है, स्तम्भ-शीर्ष दूर जाकर गिरा और खंडित हो गया है।"

हमारे अनुमान से यह ध्वंस शुंगकाल में हुआ होगा और इस प्रकार यह स्तम्भ मौर्यकालीन ही है। इतना अवश्य है कि इसमें उस उत्कृष्ट कला के दर्शन नहीं होते जो सारनाथ के अन्य कुछ स्तम्भों पर होते हैं; फिर भी यह अत्यन्त सुन्दर है (चित्र ८) और अशोककालीन कहे जानेवाले अनेक स्तम्भों की टक्कर का है। विशेषतः इनकी तुलना संकीसा तथा बटवारी ग्राम के स्तम्भों से की जा सकती है। आज इसपर ओप भी दिखाई नहीं देता। घण्टाकृति अथवा कमलाकृति भाग आधा टूट गया है। उसके ऊपर भँजी हुई रस्सी की आकृति का कण्ठा बना हुआ है। इसके ऊपर ही एक गोल सादा पट्टी है, जिसके ऊपर गोल चौकी है। इस चौकी में चारों ओर बैल, हाथी, सपक्ष ऊँट, सपक्ष घोड़ा, विदेशी जिराफ और दाढी युक्त मानवमुख सपक्ष सिंह आदि आठ उभरे हुए पशुओं को देखकर ही अनेक विद्वान् इस स्तम्भ को शुंगकालीन मानते हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि यह सपक्ष पशु शुंगकाल के पूर्व भी बनाए गए हैं। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि इस स्तम्भ-शीर्ष की चौकी पर अंकित ये सपक्ष पशु मौर्यकालीन ही हैं।* ये पशु सारनाथ के स्तम्भ शीर्ष पर भी

---

‡ आ० स० ई० भाग १०, पृष्ठ ५५-५६

* फिर सपक्षसिंह उदयगिरि की गुहा नं० ६ के द्वार के अलंकरणों में तथा पवाया में प्राप्त हुए हैं। इन सपक्ष पशुओं तथा अभिप्रायों के विषय में प्रसिद्ध कलामर्मज्ञ राय कृष्णदास ने लिखा है—"अशोकीय स्तम्भों पर के परगहों की बैठकों के विषय में, पाटलिपुत्र में निकले हुए अशोक के सभाभवन के छेंकन के विषय में, तथा पिछले मौर्यकाल से लेकर कुषाणकाल तक की वास्तु और मूर्तियों पर आनेवाले कुछ अभिप्रायों के विषय में कतिपय विद्वानों का मत है कि वे ईरान की कला से आए हैं। उक्त परगह और छेंकन के सिवा जिनकी चर्चा आगे की जायगी, ये अभिप्राय संक्षेप में इस प्रकार हैं:—

(१) पंखदार सिंह (२) पंखदार वृषभ (३) नर-मकर, जिनमें से कुछ में घोड़े जैसे पैर भी होते हैं

आसीन हैं। चौकी के ऊपर एक विशाल केशरी बैठा हुआ उसका मुख टूट गया है, परन्तु फिर भी उसकी विशालता एवं दृढ़ता दर्शनीय है।‡

अशोक के अन्य स्तम्भ तथा पटना की चामर-ग्राहिणी आदि चुनार के पत्थर की बनी हुई हैं, परन्तु यह स्तम्भ स्थानीय पत्थर का बना है। इस प्रकार के अविकसित स्तम्भों को अनेक विद्वानों ने अशोक के पूर्वकाल का माना है।* इस स्तम्भ को हम या तो मौर्यकाल कृति मानते हैं या फिर इन विद्वानों की तरह पूर्व अशोककालीन।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है इस पर ओप के अभाव का कारण उदयगिरि का निकृष्ट कोटि का पत्थर भी हो सकता है। अशोकीय ओप चुनार के पत्थर पर ही अच्छी आई है।

लुहाँगी पहाड़िया पर प्राप्त स्तम्भ-शीर्ष (चित्र ९) भी मौर्यकाल की कला का उदाहरण है। इस पर भी मौर्य ओप नहीं है और न इसकी चौकी पर श्रेष्ठ अंकन ही हुआ है; परन्तु यह अकुशल कलाकार की कृति होते हुए भी मौर्यों के काल की कृति है। इसमें कमल पंखुड़ियों के भाग के ऊपर बटी हुई रस्सी के अलंकरण का कंठा है। गोल चौकी पर रमपुरवा के स्तम्भ-शीर्ष जैसे अलंकरणों को उत्कीर्ण किया है। परन्तु वह इतना श्रेष्ठ नहीं है। स्तम्भ-शीर्ष पर दो सिंह और दो हाथी एक के बाद एक बैठे हुए थे, परन्तु अब केवल उनके पैर रह गए हैं।

और कुछ की पूंछें दोहरी होती हैं (४) नर-अश्व (५) मेष-मकर (६) गज-मकर (७) वृष-मकर (८) सिंह-नारी (९) गरुड़-सिंह तथा (१०) मनुष्य के धड़वाले पक्षी। किन्तु इस प्रकार के अभिप्राय ईरानी कला में लघु-एशिया के देशों से आए थे और वहाँ से भारतवर्ष का बहुत पुराना सम्बन्ध था।" भारतीय मूर्तिकला, पृष्ठ ३७–३८।

‡ इस राज्य में अब तक वि० १००० के पूर्व के कुल नीचे लिखे स्तम्भ, स्तम्भशीर्ष अथवा स्तम्भखण्ड प्राप्त हुए हैं—(१) उदयगिरि का एक सिंह का स्तम्भशीर्ष गूजरीमहल संग्रहालय, ग्वालियर में (२) लुहांगी का स्तम्भ-शीर्ष—लुहांगी पहाड़िया पर (३) कल्पवृक्ष स्तम्भशीर्ष—कलकत्ता संग्रहालय में (४) खामबाबा—बेसनगर (५) गौतमीपुत्र के अभिलेख युक्त स्तम्भ का खण्ड—गूजरीमहल संग्रहालय में (६) गरुड़ स्तम्भ-शीर्ष—गू० म० सं०। (७) मकर शीर्ष—गू० म० सं० (८) ताड़ स्तम्भ-शीर्ष—बेसनगर (९) ताड़ स्तम्भ-शीर्ष—बेसनगर गू० म० सं० (१०) ताड़ स्तम्भ-शीर्ष—पवाया गू० म० सं० (११) सिंह और वृक्षयुक्त चौकी—गू० म० संग्रहालय (१२) घंटाकृति (कमल) का खंड—गू० म० सं० (१३) चार सिंहों का शीर्ष—गू० म० सं० (१४) सूर्य स्तम्भ शीर्ष—पवाया—गू० म० सं० (१५) चांचौड़ा में प्राप्त स्तम्भ-खण्ड—चांचौड़ा (१६) पठारी स्तम्भ—पठारी और (१७) सौंदनी के दो स्तम्भ—सौंदनी में (केवल शीर्ष का कुछ भाग गू० म० सं०)। यह सूची न सम्पूर्ण है और न हो सकती है। सम्भव है आगे के उत्खनन में इसमें वृद्धि हो।

उदयगिरि के स्तम्भों के सम्बन्ध में डॉ० भाण्डारकर ने बहुत गड़बड़ी उत्पन्न करदी है। जब उन्होंने उदयगिरि का उत्खनन किया तब उसका विवरण वेस्टर्न सरकिल के भारतीय पुरातत्त्व की शोध की सन् १९१५ की रिपोर्ट में पहले पहले प्रकाशित किया। उसके पृष्ठ ६४ पर वे लिखते हैं:—

When I first visited the place in November 1913, a large mound thickly overgrown with jungle attracted my attention chiefly on account of the remains of a pillar close by, also noticed by Cunningham when he visited Besh." कनिंघम का उद्धरण ऊपर दिया जा चुका है। उन्होंने एक-सिंहयुक्त स्तम्भ देखा था। परन्तु आगे भाण्डारकर राशियों और चार सिंहोंयुक्त स्तम्भ का वर्णन करने लगते हैं। उन्होंने वहाँ पर यह भी बतलाने का प्रयत्न नहीं किया है कि कनिंघम का देखा हुआ एक सिंह का स्तम्भ-शीर्ष, चार सिंह का स्तम्भ-शीर्ष कैसे हो गया? वास्तव में ये दोनों स्तम्भ-शीर्ष ही उदयगिरि पर थे।

* राय कृष्णदास : भारतीय मूर्तिकला पृष्ठ ३७।

एक सवारयुक्त हाथी की मूर्ति (चित्र १०) बेसनगर में प्राप्त हुई है और वह अब गूजरीमहल संग्रहालय में सुरक्षित है। हाथी की सूंड टूट गई है। सवार का भी ऊपर का भाग टूट गया है। कनिंघम ने इसे भी किसी स्तम्भ का शीर्ष माना है। कनिंघम ने इसके विषय में लिखा है, "इस मूर्ति पर अशोक के स्तम्भों के समान वहुत अधिक ओप है और मुझे कोई शंका नहीं कि यह अशोककालीन है।"† आज इसपर कोई ओप दिखाई नहीं देता।

आनन्द कुमारस्वामी ने अपने 'इण्डियन एण्ड दी इण्डोनेशियन आर्ट' के इतिहास में‡ बेसनगर में प्राप्त (अब कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित) कल्पवृक्ष-स्तम्भ-शीर्ष को मौर्यकालीन लिख दिया है, यद्यपि उन्होंने अपनी उक्त धारणा का कोई कारण नहीं दिया है। कल्पवृक्ष का सम्बन्ध बौद्ध मत से नहीं है, यह किसी प्रकार भी अशोककालीन नहीं हो सकता। ज्ञात होता है कि बौद्धों के बोधि-वृक्ष के अनुकरण में शुंगकाल में भागवत धर्मावलम्बी मूर्तिकारों ने इस कल्प-वृक्ष की कल्पना करके इसे किसी विष्णु-मन्दिर के सामने स्थापित कर दिया।

राज्य की सीमाओं में कोई पूरा अशोक का अभिलेखयुक्त स्तम्भ प्राप्त नहीं हुआ। निकट ही साँची में अभिलेख-युक्त स्तम्भ के होते हुए इसकी आशा भी नहीं थी। परन्तु इस महान् बौद्ध सम्राट् के स्तम्भों से स्फूर्ति पाकर बनाए हुए पिछले अनेक स्तम्भ और स्तम्भ-शीर्ष राज्य की सीमाओं में प्राप्त हुए हैं। प्रचार के अन्य साधनों के अभाव के उस युग में जब यातायात भी सरल न था, ये स्तम्भ प्रचार की दृष्टि से अधिक उपयोगी थे।

उज्जैन में कुछ पतले तथा चिकने मृतिका-पात्र मिले हैं, वे मौर्यकालीन माने जाते हैं (चित्र ११)। उनपर की कारीगरी न तो पर्याप्त मात्रा में मिली है और न पूर्ण ही, परन्तु वे अपना विशेष स्थान रखते हैं। उज्जैन में ही प्राप्त हाथी दाँत के सामान में विदिशा के दन्तकार या उनके पूर्वजों की कारीगरी है, ऐसा माना जा सकता है। उज्जैन के उत्खनन में मिले ओपदार गुरिए मूर्तिकला की सीमा में सम्भवतः नहीं आते। उज्जैन तथा बेसनगर में प्राप्त मृण्मूर्तियों (चित्र १२) में अनेक मौर्यकालीन हैं।

---

† आ० स० ई०, भाग १०, पृ० ४१।

‡ पृष्ठ १७।

शुंग काल

—ई० पू० १५० से ई० पू० ७३ तक—

अन्तिम मौर्य सम्राट् ब्रहद्रथ को लगभग १८४ ई० पू० में मारकर विदिशा निवासी पुष्यमित्र शुंग ने साम्राज्य की बागडोर अपने हाथ में सँभाली। ये शुंग लोग मूलतः विदिशा के रहनेवाले थे। पुष्यमित्र के जीवन-काल में ही अग्निमित्र विदिशा में उसकी ओर से शासन कर रहा था। पुष्यमित्र ने अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किए। ये यज्ञयागादि बौद्ध धर्म के प्रभाव के पश्चात् से बन्द पड़े थे। हरिवंशपुराण के अनुसार राजा जनमेजय के बाद पुष्यमित्र ने ही अश्वमेध यज्ञ का पुनरुद्धार किया। इस काल में बौद्ध एवं जैन धर्मों के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। इसी काल में सुमति भार्गव ने मनुस्मृति का सम्पादन किया। महाभारत एवं वाल्मीकि रामायण का सम्पादन भी इसी काल में हुआ। भविष्यपुराण में पुष्यमित्र को हिन्दू समाज और धर्म का रक्षक कहा है, और उसे कलि के प्रभाव को मिटाने वाला तथा गीता का अध्ययन करनेवाला लिखा है।* इसी समय दक्षिण में सातवाहनों का राज्य प्रबल हो रहा था। शुंगों की तरह सातवाहन भी ब्राह्मण थे। इसी प्रकार इस काल में हिन्दुओं के भागवत धर्म को अत्यधिक महत्ता मिली।

इस काल में हिन्दू धर्म का प्रभाव इतना बढ़ा हुआ था कि पश्चिम में कलिंग का विजयी सम्राट् खारवेल यद्यपि जैन धर्मावलम्बी था, फिर भी उसने राजसूय यज्ञ किया! हिन्दू धर्म के इस काल के प्राबल्य का प्रमाण इससे भी मिलता है कि उस काल के पश्चिमोत्तर के ग्रीक राजाओं के राजदूतों तक ने भागवत धर्म स्वीकार किया था। शुंगकाल में यवनों (ग्रीकों) से भी संघर्ष होकर अन्त में मैत्री स्थापित हो गई, ऐसा ज्ञात होता है। पुष्यमित्र के समय में ही उसके पौत्र वसुमित्र ने सिन्ध के किनारे यवनों को हराया था। पुराणों के अनुसार शुंगवंश में दस राजा हुए। नवें राजा भाग (भागवत) के राज्यकाल में तक्षशिला के ग्रीक राजा ने विदिशा में अपना राजदूत भेजा था, जो भागवत धर्म को मानता था। उस अपनी श्रद्धा के प्रदर्शन के लिए वह प्रसिद्ध गरुड़ध्वज स्थापित कराया जिसका वर्णन आगे विस्तार से किया जाएगा। † उस

*** जायसवाल: मनु और याज्ञवल्क्य, पृष्ठ ५२।**

† इस स्तंभ को लोगों ने 'खामबाबा' (खाम=खंभा) कह कर पूजना प्रारम्भ कर दिया।

पर उसने एक अभिलेख भी खुदवाया है जिसमें ब्राह्मी अक्षरों तथा प्राकृत भाषा में लिखा है—

(पंक्ति १) देवदेवस वासुदेवस गरुड़ध्वजे अयं
(पंक्ति २) कारिते इअ हेलिओदरेण भाग
(पंक्ति ३) वतेन दियस पुत्रेण तखसिलाकेन
(पंक्ति ४) योनदूतेन आगतेन महाराजस
(पंक्ति ५) अंतलिकितस उंपता सकासं रञो
(पंक्ति ६) कासीपु[त्र]स[भा]ग[भ]द्रस त्रातारस
(पंक्ति ७) वसेन [चतु]दसेन राजेन वधमानस।

'देवाधिदेव वासुदेव का यह गरुड़ध्वज (स्तम्भ) तक्षशिला निवासी दिय के पुत्र भागवत हेलियोदोर ने बनवाया; जो (हेलियोदोर) महाराज अंतलिकित के यवन (ग्रीक) राजदूत होकर (विदिशा) के महाराज कासी(माता)पुत्र (प्रजा-)पालक भागभद्र के समीप उनके राज्य के चौदहवें वर्ष में आये थे।'

इस स्तम्भ का मूर्तिकला के उदाहरण के रूप में इसके महत्त्व का विवेचन आगे किया जाएगा परन्तु यहाँ ऐतिहासिक दृष्टि से उस पर विवेचन करना उचित है। ग्रीक राजा अन्तलिकित (Antialkidas) का समय ई० पू० १४० निश्चित है। अतएव यह अभिलेख निश्चित रूप से सिद्ध करता है कि ईसवी पूर्व दूसरी शताब्दी में भागवत धर्म को ग्रीकों तक ने अपनाया था। दिय का पुत्र हेलियोदोर अकेला ग्रीक नहीं है जिसका भागवत धर्म में श्रद्धा का प्रमाण हमें प्राप्त है। विदिशा में जो शुंगकालीन यज्ञशाला के अवशेष प्राप्त हुए हैं* उनमें कुछ मिट्टी की मुद्राएँ मिली हैं। उनमें से एक पर लिखा है—

(पंक्ति १) टिमित्र–दात्रिस्य[स]–हो[ता]
(पंक्ति २) प[ो]तामंत्र–सज[?ि]न

इसका अर्थ स्पष्ट नहीं है, परन्तु इसमें 'होता' 'पोता' तथा 'मंत्र' के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि इसका सम्बन्ध किसी हिन्दू (ब्राह्मण) यज्ञ से है। इसमें 'टिमित्र' शब्द व्यक्ति का सूचक ज्ञात होता है। यह टिमित्र ग्रीक डेमेट्रियस (Demetrius) है और वह दाता या यजमान है जिसके साथ 'होता' 'पोता' आदि थे।

अतएव इस काल में ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म का पुनरुद्धार हुआ, उसे ग्रीकों (यवनों) तक ने स्वीकार किया तथा उसका प्रभाव जैन खारवेल तक पर पड़ा, यह सिद्ध है। परन्तु एक बात ध्यान रखना आवश्यक है। दिव्यावदान तथा तारानाथ के इतिहास में पुष्यमित्र शुंग के विषय में यह लिखा है कि उसने तलवार के बल से बौद्ध धर्म का दमन किया। यह कथन कुछ बढ़ाकर किया गया ज्ञात होता है। पहले लिखा जा चुका है कि प्राचीनकाल में धार्मिक असहिष्णुता कम होती थी और होती भी थी तो वह सीमित ही होती थी। अन्यथा यह सम्भव नहीं होता कि शुंगकाल में ही साँची के बौद्ध स्तूपों के चारों ओर अत्यन्त सुन्दर तोरण बनाए जाते। यह अवश्य है कि इन राजाओं के द्वारा ब्राह्मण धर्म का प्रचार और प्रसार अधिक अवश्य हुआ।

इन राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव कला पर पड़ना प्राकृतिक था। ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म के प्रभाव का जो सूत्रपात इन शुंगों के काल में हुआ उसे नाग और वाकाटकों ने पोषित किया तथा गुप्तों के काल में वह पूर्ण विकसित हुआ। उसी प्रकार मूर्तिकला के क्षेत्र में भी जिस हिन्दू कला का प्रारंभिक रूप इस काल में दिखाई दिया उसी का विकास क्रमशः नाग, वाकाटक तथा गुप्तवंश में हुआ। शुंग-पूर्व की मूर्तिकला तथा शुंगकालीन मूर्तिकला में प्रधान अन्तर यही है कि जहाँ प्रथम बौद्ध धर्म की अनुगामिनी है वहाँ वह ब्राह्मण धर्म की।

दूसरी प्रधान बात है यवनों (ग्रीकों) के सम्पर्क के प्रभाव की। यद्यपि ग्रीक कारीगर भारत में बुलाने अथवा ग्रीक कला की भारतीय कलाकारों द्वारा नकल करने का कथन हास्यास्पद ही है, परन्तु यह तो प्राकृतिक है कि भारतीय

*** आर्केआलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट सन् १९१४-१५, पृष्ठ ७२-८३।**

कलाकार विदेशी कला से किसी सीमा तक प्रभावित हो सकता है। वह प्रभाव बढ़ने के साधन और अवसर मौर्यकाल की अपेक्षा अधिकतर होते गए। प्राग्-मौर्य और मौर्यकला यथार्थ चित्रण की ओर प्रवृत्त होती थी, अब उस दिशा की ओर प्रयाण प्रारम्भ हुआ जिसमें गुप्तकालीन तथा पूर्व मध्यकालीन आदर्शवादी भाव प्रधान कृतियों को जन्म दिया।

इस काल की मूर्तिकला के उदाहरण में कुछ स्तम्भ-शीर्ष ही प्रस्तुत किए जा सकते हैं और सम्भवतः बेसनगर की विष्णु-मूर्ति को इस काल की माना जा सकता है। साथ ही नागों की कला और शुंगों की कला के बीच कोई विभाजक रेखा खींचना भी कठिन है; * परन्तु खामबाबा के निर्माण की तिथि निश्चित होने के कारण उसे केन्द्र मानकर इस काल की मूर्तिकला पर प्रकाश डाला जा सकता है।

खामबाबा (हेलियोदोर का गरुड़ स्तम्भ) के पास कोई विष्णु-मन्दिर था यह वहाँ के अवशेषों के उत्खनन से सिद्ध हुआ है।† एक अन्य स्तम्भ के अभिलेख से भी सिद्ध होता है कि यहाँ भागवत (वासुदेव) का कोई 'प्रासादोत्तम' था, जिसमें भागवत गोतमीपुत्र ने गरुड़ध्वज बनवाया।‡

बेसनगर में एक विष्णु-प्रतिमा (चित्र १३) मिली है। वह अत्यन्त भग्नावस्था में है। उसके चार हाथों में से तीन टूट गए हैं। नाभि के नीचे का भाग नष्ट हो गया है। पैरों का भाग पृथक् प्राप्त हुआ है। इस पर अलंकार अत्यन्त थोड़े हैं। मुकुट के अतिरिक्त गले में कौस्तुभ मणियुक्त कण्ठा है। कानों में भरहुत की मूर्तियों जैसे बड़े बड़े बाले हैं। बचे हुए बाएँ हाथ में सिंहमुखी गदा है। सिर के पीछे प्रभामण्डल है। यदि इस मूर्ति की तुलना उदयगिरि की गुहा नं० ६ के द्वार पर बनी हुई विष्णु-मूर्तियों से अथवा पवाया में प्राप्त विष्णु-मूर्ति से की जाए तो यह उनसे बहुत पूर्व का प्रयास स्पष्ट ज्ञात होती है। यह प्राप्त भी हेलियोदोर के स्तम्भ के पास हुई है, इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रतिमा ई० स० १४० पूर्व में अस्तित्व रखनेवाले प्रासादोत्तम में स्थापित विष्णु-प्रतिमा है।

इस प्रतिमा के विषय में डॉ० देवदत्त भाण्डारकर ने यह अनुमान किया है कि यह गरुड़ की प्रतिमा है और हेलियोदोर के स्तम्भ पर स्थापित थी। उनका प्रधान तर्क यह है कि उन्हें चारों ओर कुरेद कर बनाई हुई इतनी प्राचीन विष्णु प्रतिमा नहीं मिली है। परन्तु आगे वे इस प्रतिमा को चन्द्रगुप्तकालीन लिखकर यह लिखते हैं कि 'इससे अधिक प्राकृतिक

---

* शुंग और नागकालीन अर्धचित्रों का अन्तर श्री० डॉ० मोतीचन्द्र, क्यूरेटर, आर्ट सेक्शन, प्रिन्स ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई ने निम्नलिखित लिखकर भेजने की कृपा की है—"शुंगकाल की मूर्तियाँ या चित्र अपनी कारीगरी से पहचाने जा सकते हैं। इसमें आकृतियाँ चिपटी होती हैं, दूर और निकट दिखलाने की प्रथा नहीं है और एक ही पृष्ठ भूमि पर सब काम दिखलाए जाते हैं जिसका फल यह होता है कि पीछे या आगे की सभी आकृतियाँ प्रायः समान होती हैं। आकृतियों के अंकन में भी कुछ कमजोरी दीख पड़ती है। इसके विपरीत नागयुग की कला भरहुत या साँची से बहुत आगे बढ़ गई है। दूर-निकट दिखलाने की प्रकार इस कला में रूढ़ि बन गई है। इस कला में एक ऐसी गति है जो भरहुत में तो नहीं पाई जाती पर जिसका प्रारंभ सांची में हुआ और जो अपने पूर्ण रूप को अमरावती में प्राप्त हुई।" शुंगकालीन अर्ध-चित्रों के इस राज्य में अभाव के कारण मैं इस जानकारी का लाभ न उठा सका।

† आ० स० इ०, वार्षिक रिपोर्ट सन् १९१४–१५, पृष्ठ ६६।

‡ आ० स० इ०, वार्षिक रिपोर्ट सन् १९१३–१४, पृष्ठ १९०। इस स्तम्भ का लेखयुक्त खण्ड इस समय गूजरीमहल संग्रहालय में रखा है। वह अठपहलू है और हरएक पहलू पर नीचे लिखा लेख ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है :—

(पंक्ति १) गोतम(ी)पुतेन (पंक्ति २) भागवतेन (पंक्ति ३) .... (पंक्ति ४) [भ]गवतो प्रासादोत-(पंक्ति ५) मस गरुड़ध्वज [।]कारि [त] (पंक्ति ६) [द्वा]दस-वस-अभिसिते (पंक्ति ७) ...भागवते महाराजे

अर्थात्, गौतमी के पुत्र भागवत ने विष्णु के प्रासादोत्तम में गरुड़ध्वज बनवाया जबकि महाराज भागवत के अभिषेक को बारह वर्ष हो गए थे।' सम्भवतः यह 'भागवत' और खामबाबा का 'भागभद्र' एक ही व्यक्ति होंगे।

और क्या होगा कि विष्णु का परम उपासक यह गुप्त सम्राट्, जिसका विदिशा आना अभिलेखों से सिद्ध है, इस स्तम्भ (हेलियोदोर स्तम्भ) पर गरुड़ की यह प्रतिमा स्थापित करे।'* अर्थात् वे इस तर्क को प्रस्तुत करते समय यह भूल गए कि वे 'हेलियोदोरेण भागवतेन' कारित 'गरुड़ध्वज' के विषय में लिख रहे हैं। उस पर गरुड़ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने नहीं उससे अनेक शताब्दियों पूर्व के हेलियोदोर ने बैठाया था।

इसकी अविकसित मूर्तिकला तथा शास्त्रों में वर्णित विष्णु-मूर्ति की कल्पना का अधूरा चित्रण इसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में बनी विष्णु-प्रतिमाओं से बहुत पूर्व की घोषित करते हैं। जिस गुप्तकालीन कलाकार ने उदयगिरि की वराह मूर्ति एवं बेसनगर की नृसिंह मूर्ति बनाई है, उसीकी बनाई हुई यह प्रतिमा नहीं हो सकती।

कुरेद कर बनाई जाने के कारण मूर्ति का समय निर्धारित करने के तर्क की तथ्यहीनता ऊपर बतलाई ही जा चुकी है।

इस मूर्ति में हमें मौर्य अथवा प्राग्मौर्य कला के यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति से हटने का प्रयास स्पष्ट दिखाई देता है। मूर्तिकार ने विष्णु भगवान् की कल्पना साधारण मानव जैसी नहीं की। उनका चतुर्भुज अलौकिक रूप उसके नेत्रों में घूमने लगा और वही मूर्त करने का प्रयास उसने किया। धार्मिक मूर्ति केवल मानव अंगों का प्रत्यक्षीकरण न होकर साधक अथवा भक्त के इष्टदेव के अंकन का प्रयास होने लगी। ग्रीकों के देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मानवों की लौकिक सौन्दर्य एव स्वास्थ्य की प्रतिमाएँ हैं परन्तु भारतियों के आराध्य देवों की मूर्तियाँ अलौकिक चित्रण होती हैं। इस भावना ने पूर्ण विकास आगे पाया; परन्तु यह बेसनगर की विष्णुमूर्ति इस अलौकिक रूप-कल्पना का प्राचीनतम प्रमाण है। इससे यह भी स्पष्ट है कि भारतीय कलाकार की आत्मा को ग्रीक कला प्रभावित न कर सकी, बाह्य उपकरणों में कहीं किया हो तो किया हो।

इस मूर्ति के अतिरिक्त इस काल के केवल कुछ स्तम्भ-शीर्ष ही मूर्तिकला के उदाहरण के रूप में हमें प्राप्त हैं। विदिशा (बेसनगर) में प्राप्त खामबाबा, कल्पवृक्ष-स्तम्भ-शीर्ष, मकर तथा गरुड़-शीर्ष इस काल की कृतियाँ हैं।

पूरा स्तम्भ मूर्तिकला के अन्तर्गत नहीं आता। वह एक प्रकार का स्थापत्य है। परन्तु उसके ऊपर का अलंकरण मूर्तिकला की सीमा में अवश्य आता है।

खामबाबा (हेलियोदोर स्तम्भ) (चित्र १४) का गरुड़ अभी मिला नहीं है। इस स्तम्भ पर अशोककालीन ओप नहीं है, उनका धरातल खुरदरा है। स्तम्भ-शीर्ष के नीचे भी इसमें दो अलंकृत पट्टियाँ खुदी हुई हैं। नीचे की पट्टी में आधे आधे विकसित कमलों का अलंकरण है। इनके ही नीचे ऊपर दिया गया प्रसिद्ध अभिलेख है तथा उसके नीचे दो पंक्तियाँ और खुदी हुई हैं। कमल के अलंकरण के ऊपर बटी हुई रस्सी, खूंटी तथा फूलों का अत्यन्त सुन्दर अलंकरण बनाया गया है। शीर्ष में कमलाकृति अथवा घण्टाकृति भाग के ऊपर बटी हुई रस्सी का अलंकरण है। इनके ऊपर चौकोर चौकी है। [illegible] सुन्दर अलंकरण बने हुए हैं। ग्रीक हेलियोदोर द्वारा बनवाए इस स्तम्भ में प्रत्यक्ष ग्रीक प्रभाव कुछ भी नहीं है।

बेसनगर में ही किसी अन्य स्तम्भशीर्ष के दो खण्ड मिले थे, जिनमें एक मकर था (चित्र १५)। यह मकर दूसरे खण्ड के ऊपर रखा हुआ था और इस प्रकार यह मकर-शीर्ष किसी स्तम्भ पर सुशोभित था। वासुदेव, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न की साथ साथ पूजा की जाती है। इनमें प्रद्युम्न कामदेव के अवतार 'मकर-केतन' हैं। 'नगरी' में वासुदेव, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न के मन्दिर साथ साथ मिले हैं। यह 'मकरध्वज' भी विदिशा के किसी ऐसे मन्दिर की स्मृति है। इसका मकर कुछ भद्दा बना है और इसके कान के पास के छेद यह बतलाते हैं कि इसके ऊपर भी कोई मूर्ति रही होगी। दूसरा खण्ड अधिक कलापूर्ण है। घण्टाकृति के ऊपर बटी हुई रस्सी का अलंकरण है। फिर गुरियों और फूलों के अलंकरणों युक्त दो पट्टियों के ऊपर बाड़ जैसी चौकी है। चौकी पर आमलक की आकृति का अनेक पहलू का गोल चपटा शीर्ष है, जिसमें एक मुठियासी निकली है। इसी पर मकर रखा गया होगा।

गरुड़ की मूर्तियुक्त एक स्तम्भ-शीर्ष की चौकी भी प्राप्त हुई। इसका गरुड़ टूट गया है, केवल पैरों के चिह्न शेष हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इसका गरुड़ पक्षी के रूप में था। यह भी इसी काल के किसी स्तम्भ का अवशेष है, ऐसा अनुमान है।

*** आर्केलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, सन् १९१५-१६, पृष्ठ १९५-१९६।**

परन्तु सबसे अद्भुत एवं कुतूहलवर्धक कल्पवृक्ष-स्तम्भ-शीर्ष है (चित्र १६)। यह बेसनगर में ही प्राप्त हुआ था तथा अब कलकत्ता संग्रहालय में है, यह ऊपर लिखा जा चुका है। यह शुंगकालीन है इसका भी ऊपर उल्लेख किया जा चुका है।

बाड़ की सी चौकी के ऊपर एक गमले जैसी आकृति में वड़ जैसे पत्तों एवं जटाओं युक्त पेड़ बना है। पेड़ की गुमटी बन गई है। पत्तों के अतिरिक्त छोटे छोटे फलों के आकार भी बीच बीच में बने हुए हैं। जो जटाएँ नीचे को आई हैं उनसे आठ भाग बन गए हैं। इनमें चार में मुंह बँधे हुए भरे बोरे एक एक भाग छोड़कर रखे हुए हैं। बीच बीच में चार मुद्राओं से लबालब भरे हुए पात्र रखे हैं। चारों पात्र पृथक् पृथक् हैं। एक औंधा शंख है, दूसरा फुल्ल कमल की आकृति का है, तीसरा पूर्ण घट है, चौथी कोई अज्ञात वस्तु है।

यह एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा है कि समुद्र-मंथन के समय अन्य वस्तुओं के साथ साथ यह मनवांछित फल देने-वाला देवतरु अथवा कल्पवृक्ष भी निकला था। उससे जो भी जिस पात्र को लेकर याचना की जायगी वही लबालब भर जाएगा, इस भावना का अंकन इस मूर्ति में है। इस कल्पना का सम्बन्ध पूर्णतः ब्राह्मणधर्म से है, अतः यह शुंगकालीन है।

विदिशा तथा पास में ही प्राप्त अनेक मुद्राओं पर बाड़ और वृक्ष का चिह्न मिलता है। यह बोधिवृक्ष माना गया है। मेरे मत में इन मुद्राओं की इस दृष्टि से परीक्षा होना चाहिए कि यह वृक्ष कल्पवृक्ष है। जिस काल में 'कल्पवृक्ष' स्तम्भ के शीर्ष के रूप में बनाया जा सकता है, उसी काल में मुद्राओं पर भी उसका अंकन हो सकता है।

अभी शुंगकालीन मूर्तियाँ इस राज्य की सीमाओं में अधिक नहीं मिली हैं। यद्यपि उपरोक्त उदाहरणों से उस काल के राजनीतिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है, परन्तु मानव-मूर्तियाँ न मिलने से रहन-सहन और वेशभूषा के विकास पर दृष्टि नहीं डाली जा सकती। विदिशा की यज्ञशालाओं के तथा गौतमीपुत्र एवं हेलियोदोर-कालीन विष्णु के प्रासादोत्तम के आसपास अभी शुंगकालीन मूर्तिकला के अन्य उदाहरण भी मिल सकेंगे, ऐसी आशा है।

नाग कालीन

—ई० पू० ७२ से ई० सन् ३४४ तक—

विदिशा के शुंग धीरे धीरे मगध के हो चुके थे, विदिशा केवल प्रान्तीय राजधानी रह गई थी। शुंगों का मगध का राज्य कण्वों के हाथ आया। परन्तु विदिशा में शुंगों के राज्यकाल में ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजवंश का प्रभाव बढ़ रहा था। विदिशा के नागों द्वारा शासकों की जिस परम्परा का विकास हुआ उसने अपने प्रचण्ड प्रताप, कला-प्रेम और शिव-भक्ति की स्थायी छाप भारतीय इतिहास पर छोड़ी है। इन नागों का प्रभावक्षेत्र यद्यपि बहुत विस्तृत था, मध्यभारत के वनाक्रांत भूखण्डों से लेकर गंगा-यमुना का दोआब तक उसमें सम्मिलित था, परन्तु इन नागों का समय हमारे लिए अनेक कारणों से महत्त्व का है। प्रथम तो ग्वालियर-राज्य के उत्तरी प्रान्त के गिर्द शिवपुरी जिलों में इनका राज्य था जहाँ नरवर, पवाया, कुतवाल आदि स्थलों इनका पर प्रभाव था और उधर दक्षिण में मालवे धार तक इनका राज्य था।* उनका प्रधान केन्द्र अधिक समय तक इस राज्य के तीन नगर रहे–विदिशा, पद्मावती और कान्तिपुरी † (वर्तमान कोतवाल)। दूसरे हिन्दू इतिहास के स्वर्णकाल–'प्रसिद्ध गुप्तवंशीय श्रीसंयुत एवं

---

* नागों के साम्राज्य की सीमा के विषय में कनिंघम ने लिखा है (आ० स० ई० भाग २, पृष्ठ ३०८-३०९):—

"The Kingdom of the Nagas would have included the greater part of the present territories of Bharatpur, Dholpur, Gwalior, and Bundelkhand, and perhaps also some portions of Malwa, as Ujjain, Bhilsa and Sagar. It would thus have embraced nearly the whole of the country, lying between the Jamuna and the upper course of Narbada, form the Chambal on the west to the Kayan, or Kane River, on the east,—an extant of about 800 (o) square miles..."

† कुतवाल को श्री म० ब० गर्दे, भूतपूर्व डायरेक्टर, पुरातत्त्वविभाग, ग्वालियर ने विल्सन तथा कनिंघम (आ० स० रि०, भाग २, पृष्ठ ३०८) से सहमत होते हुए प्राचीन कान्तिपुरी माना है (ग्वा० पु० रिपोर्ट, संवत् १९९७ पृष्ठ २२)। श्री० जायसवाल ने कन्तित की प्राचीन नागराजधानी से अभिन्नता स्थापित

गुण-सम्पन्न राजाओं के समृद्धिमान राज्यकाल' * की महत्ता को नाग लोगों ने ही दृढ़ आधार पर स्थापित किया था। जिस प्रकार छोटी नदी बड़ी नदी में मिलती है तथा वह बड़ी नदी महानद में, उसी प्रकार नागवंश ने अपने साम्राज्य को अपनी सांस्कृतिक सम्पत्ति के साथ वाकाटकों को समर्पित कर दिया। भवनाग ने अपनी कन्या वाकाटक प्रवरसेन के लड़के गौतमीपुत्र को ब्याह कर उनका प्रभुत्व बढ़ाया था। ठीक उसी प्रकार वाकाटक राजकन्या गुप्तों को ब्याही गई और वाकाटक वैभव गुप्त-वैभव के महासमुद्र में समाहित हो गया।

इस काल के भारत के राजनीतिक इतिहास को हम अत्यन्त पेचीदा पाते हैं। शुंगों के समय में ही कलिंग और आंध्र राज्य प्रबल हो गए थे। उत्तर-पश्चिम में गांधार और तक्षशिला पर विदेशी यवन जोर पकड़ रहे थे। शुंगों के पश्चात् उत्तर-पश्चिम के यवन-राज्य अवन्ति-आकर पर घात लगाए रहते थे। धीरे धीरे उनके आक्रमण प्रारम्भ हुए और सातवाहन, नाग, मालव-क्षुद्रक सबको मिलाकर या अकेले अकेले इनका सामना करना पड़ा। इस राजनीति का धार्मिक क्षेत्र में एक विशिष्ट प्रभाव पड़ा। ब्रहद्रथ मौर्य के समय तक बौद्ध धर्म भारत का धर्म था। अब बौद्ध धर्म ने इन विदेशी आक्रान्ताओं का सहारा लिया। अतएव धार्मिक कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक कारणों से भी हिन्दू धर्म को बौद्ध धर्म का विरोध करना पड़ा।

नागों के राजवंश को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं, शुंगों के समकालीन, शुंगों से कनिष्क तक और कुषाणों के पश्चात् से वाकाटकों तक। पहली शाखा विदिशा में सीमित थी। उसके विषय में हमें कुछ ज्ञात नहीं है, केवल पुराणों‡ में उनका उल्लेख है। शुंगों के पश्चात् नागों ने अपना राज्य विदिशा से पद्मावती तक फैला लिया था, इसके प्रमाण उपलब्ध हैं।

पुराण और सिक्कों से उनकी वंशावली भी निर्धारित की गई है, जो इस प्रकार है :—

शेष ई० पू० ११०–९०
भोगिन् ई० पू० ९०–८०
रामचन्द्र ई० पू० ८०–५०
धर्मवर्मन ई० पू० ५०–४०
वंगर ई० पू० ४०–३१
भूतनन्दी ई० पू० २०–१०
शिशुनन्दी ई० पू० १०–२५ ई०
यशनन्दी २५ ई०–३० ई०

की है (अन्धकारयुगीन भारत, पृष्ठ ५९-६६)। श्री गर्दे ने अपनी स्थापना के पक्ष में कोई तर्क प्रस्तुत नहीं किए। श्री० जायसवाल ने जो तर्क कंतित के पक्ष में प्रस्तुत किए हैं वे कुतवाल से भी सम्बन्धित किए जा सकते हैं। जनश्रुति है कि किसी समय पढ़ावली, कुतवाल और सुहानियाँ बारह कोस के विस्तार में फैले हुए एक ही नगर के भाग थे (कनिंघम आ० स० इ० भाग २, पृष्ठ ३९९ तथा भाग २० पृष्ठ १०७)। कुतवाल के विषय में कनिंघम ने भी लिखा है यह बहुत प्राचीन स्थल है (वही, भाग २०, पृष्ठ ११२) पास ही पारौली (प्राचीन पाराशर ग्राम) तथा पढ़ावली (प्राचीन धारौन) में गुप्तकालीन मन्दिरों के अवशेष मिले हैं (वही, पृष्ठ १०४ और १०९)। कुतवाल पर नागराजाओं की मुद्राएँ भी प्राप्त होती हैं (पीछे, पृष्ठ६४५)। अतएव कन्तित के बजाय कुतवाल ही प्राचीन पुराण कथित नागराजधानी है, यह मानना उचित होगा। इस कान्तिपुरी का अगला नाम कुन्तलपुरी हुआ (वही, भाग २, पृष्ठ ३९८)। कच्छपघात राजाओं के काल तक यह गत-गौरव 'कुतवाल' बन चुकी थी और सुहानिया प्रधानता पा चुकी थी।

* उदयगिरि गुहा नं० २० का शिलालेख।

‡ देखिए श्री० जायसवाल द्वारा 'अन्धकारयुगीन भारत' में पृष्ठ ८१ पर उद्धृत 'भावशतक' जिसमें गणपति नाग को 'धाराधीशः' लिखा है।

३० ई० से ७८ ई० तक के पाँच राजा लेख और सिक्कों के आधार पर।
- पुरुषदात
- उत्तमदात
- कामदात
- भवदात
- शिवनन्दी या शिवदात

पिछले पाँच राजा सम्भवतः केवल पद्मावती (पवाया) से ही सम्बन्धित रह गए थे। यह शिवनन्दी कनिष्क द्वारा पराजित हुआ है, ऐसा अनुमान किया गया है। मणिभद्र यक्ष की प्रतिमा की चरण-चौकी पर खुदे अभिलेख में उसके राज्यारोहण के चौथे वर्ष में उसे 'स्वामी' लिखा है। 'स्वामी' प्राचीन अर्थों में स्वतंत्र नरेश को लिखा जाता था। अतएव अपने राज्य के चौथे वर्ष के पश्चात् उसे कनिष्क ने हराया होगा। सन् ७८ से सन् १७५ ई० के आसपास तक नागों को अज्ञातवास करना पड़ा। वे मध्यप्रदेश के पुरिका और नागपुर आदि स्थानों पर चले गए थे।

कुषाणों का अन्तिम सम्राट् वासुदेव था। सन् १७५ ई० के लगभग वीरसेन नाग ने इस वासुदेव को हराकर मथुरा में हिन्दू राज्य स्थापित किया। इन नव नागों के विषय में वायुपुराण में लिखा है—'नवनागाः पद्मावत्यां कांतिपुर्यां मथुरायां।'

मथुरा में राज्य स्थापित कर वीरसेन नाग ने अपने राज्य को पद्मावती तक फिर फैला दिया*। कान्तिपुरी ग्वालियर-राज्य का कोतवाल है, ऐसा ऊपर सिद्ध किया गया है, और पवाया ही प्राचीन पद्मावती है, इसमें भी शंका नहीं है।† वीरसेन के बाद पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरा में नागवंश की तीन शाखाओं के तीन राज्य स्थापित हुए। सिक्कों पर से निम्नलिखित राजाओं के नाम ज्ञात हुए हैं:—

भीम नाग (सन् २१०–२३० ई०)
स्कन्द नाग (सन् २३०–२५० ई०)
बृहस्पति नाग (सन् २५०–२७० ई०)
व्याघ्र नाग (सन् २७०–२९० ई०)
देवनाग (सन् २९०–३१० ई०)
गणपति नाग (सन् ३१०–३४४ ई०)

गणपति नाग का उल्लेख उन राजाओं में है जिनको समुद्रगुप्त ने हराया।‡ इन पिछले नागों के अधिकार में कुन्तलपुरी के साथ विदिशा भी थी क्योंकि वहाँ पर भी इनके सिक्के मिले हैं।§

इसके पूर्व कि इस काल के राजनीतिक इतिहास को समाप्त कर मूर्तिकला का विवेचन प्रारम्भ किया जाए, यह लिखना उपयुक्त होगा कि इसी काल में विक्रम संवत् के प्रवर्तन की घटना घटित हुई थी। ई० पू० ५७ के पूर्व उज्जैन पर मालवों का अधिकार था। विदिशा में नागवंश जोर पकड़ रहा था। मालवों और नागों की सभ्यता, संस्कृति एवं राज्य प्रणाली एकसी ही थी। जब विदेशी शकों की सेनाओं ने अवन्ति-आकर को रौंदा होगा तब ब्राह्मण सातवाहनों एवं अन्य गणराज्यों की सहायता से मालव एवं नाग दोनों ने ही उनके उन्मूलन में भाग लिया होगा।¶

---

* वीरसेन के सिक्के पवाया और कुतवाल में भी मिले हैं।

† आ० सर्वे० इण्डिया वार्षिक रिपोठ सन १९४५–१६ पृष्ठ १०१.

‡ फ्लीट: गुप्त अभिलेख, पृष्ठ ६।

§ आ० स० इ० वार्षिक रिपोर्ट सन् १९१३–१४, पृष्ठ १४-१५।

¶ जायसवाल: अंधकारयुगीन भारत, पृष्ठ ११५।

नागकालीन मूर्तिकला के उदाहरणों का वर्णन करने के पूर्व हम उन विशेष अभिप्रायों[†] अथवा अलंकरणों का परिगणन करके उनपर विचार करलें जो नागों के कारण भारतीय मूर्तिकला को मिले और आगे की मूर्तिकला के अन्यतम अंग बन गए। इनमें से प्रधान निम्नलिखित हैं:—

(१) गंगा (केवल मकरवाहिनी गंगा, गंगा-यमुना की जोड़ी नहीं, जैसीकि उदयगिरि की वराह-मूर्ति के दोनों ओर गुप्तकाल में बनी)।

(२) ताड़-वृक्ष।

(३) नाग-छत्र।

गंगा—गंगा को नाग राजाओं ने अपना राजचिह्न बनाया था। उसके सिक्कों तक पर कलश लिए हुए गंगा की आकृति होती है।[‡] राजचिह्न के रूप में गंगा केवल सिक्कों तक ही सीमित नहीं रही। इन परम शिवभक्त[§] नागों ने उसकी मूर्ति का उपयोग अपने शिव-मन्दिरों को सजाने में भी किया। इस रूप में इसका उपयोग गुप्तों ने भी किया है। जानखट में वीरसेन नाग के अभिलेखयुक्त एक मन्दिर के अवशेषों को देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें द्वार के ऊपर की ओर लगाने की मकरवाहिनी गंगा की मूर्ति भी है। इस गंगा की मूर्ति का द्वार के अलंकरण के रूप में उपयोग भी तत्कालीन हिन्दू धर्म के पुनर्विकास का प्रमाण है। इसके लिए यह आवश्यक है कि गंगा के इस अलंकरण का मूल रूप खोजा जाए। इस हेतु नागकालीन मन्दिरों से लेकर मध्यकालीन मन्दिरों तक में गंगा-मूर्ति के उपयोग की विशेषताओं को नीचे दिया जाता है:—

(१) आरम्भ में द्वार के दोनों ओर मकरवाहिनी गंगा की ही मूर्ति एक ही रूप की बनाई जाती थी[¶] (देखिए उदयगिरि-गुहाद्वार तथा बाग-गुहाद्वार)।

(२) गंगा की यह मकरवाहिनी मूर्ति प्रारम्भ में द्वार की चौखट के दोनों बाजुओं के ऊपर की ओर बनाई जाती थी।

(३) गंगा की मूर्ति की बनावट में यह विशेषता रहती है कि गंगा किसी वृक्ष (सफल आम्र) की डाली पकड़े दिखाई गई है।

(४) आगे चलकर यह दोनों ओर की मूर्तियाँ बाजुओं के नीचे की ओर आगई और एक ओर मकरवाहिनी गंगा और दूसरी ओर कूर्मवाहिनी यमुना बन गई। यह पिछले गुप्तकाल में दिखाई दिया है। (देखिए-मन्दसौर के शिव-मन्दिर के द्वार का प्रस्तर—'श्रवण की कवाड़')।

(५) प्रारम्भ में यह केवल शिव-मन्दिरों में ही प्राप्त है।

[†] अंग्रेजी शब्द 'मोटिफ' के अर्थ में रायकृष्णदास ने अपनी पुस्तक भारतीय मूर्तिकला इस शब्द का प्रयोग में किया है। उसी अर्थ में हमने इस शब्द का प्रयोग किया है।

[‡] जायसवाल : अंधकारयुगीन भारत, पृष्ठ ४०।

[§] नागों की शिव और गंगा-भक्ति के प्रमाण में नीचे लिखा अभिलेख उद्धृत करना समीचीन होगा—

"अंशभारसन्निवेशितशिवलिंगोद्वाहनशिवसुपरितुष्टसमुत्पादितराजवंशानामपराक्रम अधिगतभागीरथी—अमल-जलः मूर्द्धाभिषिक्तानाम् दशाश्वमेध-अवभृथस्नातानाम् भारशिवानाम्।"

"अर्थात्, उन भारशिवों का, जिनके राजवंश का आरम्भ इस प्रकार हुआ था कि उन्होंने शिवलिंग को अपने कंधे पर रखकर शिव को परितुष्ट किया था; वे भारशिव जिनका राज्याभिषेक उस भागीरथी के पवित्र जल से हुआ था जिसे उन्होंने अपने पराक्रम से प्राप्त किया था–वे भारशिव जिन्होंने दस अश्वमेध यज्ञ करके अवभृथ स्नान किया था।"

[¶] स्मिथ ने अपने 'हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सीलोन' के पृष्ठ ७९ पर लिखा है— 'At Udayagiri, on the doorway of the Chandragupta Cave excavated in A. D. 401—2, the goddesses are represented without their vehicles.' यह कथन सत्य नहीं है। उदयगिरि में जहाँ भी द्वार से दोनों ओर इन देवियों की मूर्ति है, वहाँ उनका वाहन मकर है।

ऐतिहासिक क्रम में गंगा के समान मूर्तियों की खोज करते समय भरहुत एवं मथुरा की वृक्षकाएँ तथा यक्षिणियों की ओर दृष्टि आकृष्ट होती है। परन्तु मन्दिर के द्वार के बाजुओं के रूप में इसकी स्थिति एवं आकृति की ठीक समानता साँची स्तूप के उत्तरी एवं पूर्वी तोरण द्वारों के दोनों ओर के स्तंभों के और नीचे की बडेरी के मिलने के कोने में बाहरी ओर स्थित स्त्री मूर्तियों से है (चित्र १७)। ठीक उदयगिरि अथवा बाघ की (चित्र १८) मकरवाहिनी मूर्तियों के समान इनकी स्थिति है। नागकाल के हिन्दू धर्मावलम्बी कलाकारों ने जब शिव-मन्दिरों के द्वार बनाए होंगे तब साँची का यह बौद्ध अभिप्राय उनकी आँखों में झूल रहा होगा। नागों ने गंगा को विशेष आदर दिया, अतः उन्होंने इन तोरणों की सुन्दर कलाकृतियों के साँचे में गंगा की मूर्ति ढालदी और ठीक उसी स्थान पर जड़दी जहाँ इन तोरणों में ये यक्षणियाँ थीं (अर्थात् द्वारों के ऊपर के भाग में)। प्रारम्भ में दोनों ओर एकसी आकृति की गंगा-मूर्ति होना भी इसी स्थापना की पुष्टि करता है। साँची के तोरण द्वार के दोनों ओर की आकृतियाँ समान हैं। यह इस बौद्ध अभिप्राय का ठीक हिन्दू अनुवाद है। साँची के तोरणों की यक्षणियों में धार्मिक महत्व एवं सौन्दर्यवर्धन के उपयोग के साथ साथ बडेरियों को सहारा देने का स्थापत्य सम्बन्धी 'तोड़ों' के रूप में भी उपयोग है; परन्तु इन गंगा-मूर्तियों का यह उपयोग नहीं है क्योंकि वे तो ठोस द्वारों के अंग हैं।

समय पाकर आगे जब ये देवियाँ द्वार-स्तंभ के ऊपर की ओर से नीचे आई तो इन्होंने गंगा और यमुना के पौराणिक रूप धारण किए और शिव-मन्दिर के द्वार की पवित्रता की रक्षिकाएँ बनीं। ऊपर के वृक्ष की आकृति भी पौराणिक रूप से मेल न खाने के कारण चली गई। यह स्मरणीय है कि गंगा और यमुना की पृथक् पृथक् वाहनों पर की कल्पना के सर्व प्रथम दर्शन उदयगिरि की वराह मूर्ति के दोनों ओर होते हैं, जहाँ वे अपने अपने वाहन मकर और कूर्म पर दिखलाई गई हैं। यहीं से स्फूर्ति लेकर द्वार की मकरवाहिनी देवियाँ गंगा और यमुना बन गईं और इसका प्राचीन रूप उत्तर-गुप्तकालीन मन्दसौर की यमुना की मूर्ति है।

ताड़—नागों को महाभारत में 'ताड़ध्वज' कहा है। इनका यह राजचिह्न इनकी मुद्राओं पर भी मिलता है।* जानखट में प्राप्त मन्दिरों के अवशेष नागकालीन हैं जैसाकि वहाँ प्राप्त वीरसेन नाग के अभिलेख से सिद्ध है, इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। वहाँ पर ताड़ की आकृति का अलंकरण भी मिला है। नागों की पहली राजधानी विदिशा एवं पश्चात् की राजधानी पद्मावती में ताड़-स्तम्भशीर्ष प्राप्त हुए हैं। ये स्तम्भ नागों ने या तो शिवमन्दिरों के सामने स्थापित किए होंगे या इन 'ताड़ध्वजों' के आवास के सामने ये बने होंगे। विदिशा और पद्मावती (चित्र १९ तथा २०) के ताड़-स्तम्भ-शीर्षों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि विदिशा के ताड़शीर्षों की बनावट अधिक सरल है अतएव ये पूर्वकालीन होंगे और पद्मावती का ताड़- स्तम्भ-शीर्ष अधिक संश्लिष्ट है इसलिए यह बाद का है। यह बात इतिहास के भी अनुकूल है क्योंकि विदिशा पहली राजधानी है और पद्मावती बाद की। स्तम्भ के शीर्ष पर वृक्ष बनाने की कल्पना शुंगों के काल में भी 'कल्पवृक्ष-स्तम्भ-शीर्ष' के रूप में देख चुके हैं। ये ताड़-स्तम्भशीर्ष उसी प्रकार की कल्पना के उदाहरण हैं।

नाग-छत्र—नागों की मुद्राओं में नाग-छत्र का चिह्न बहुत आया है।† वीरसेन नाग के सिक्कों पर नाग की आकृति मिलती है। नागपूजा भारत में बहुत पुरानी है। नागों ने सर्प को अपने राजकीय चिह्नों में सम्मिलित किया। नाग राजाओं की मूर्तियों में भी इस नाग-छत्र ने स्थान पाया (देखिए—पवाया के नाग राजा की मूर्ति)।

नागों के काल में प्रसिद्धि प्राप्त इस विशेष अलंकरण अथवा अभिप्रायों के वर्णन के पश्चात् अब हम नागों के धर्म को लेते हैं, क्योंकि उसी से प्रेरित होकर नागों ने अपने मन्दिर बनवाए होंगे। नागों के विषय में पहले उद्धृत ताम्रपत्र से निम्नलिखित बातें स्पष्ट हैं:—

(१) भारशिव (नाग) अपने कंधों पर शिवलिंग रखे रहते थे अर्थात् वे परमशैव थे।

---

* जायसवालः अंधकारयुगीन भारत, पृष्ठ ४०।

(२) उनका राज्याभिषेक उस भागीरथी के पवित्र जल से हुआ था जिसे उन्होंने अपने पराक्रम से प्राप्त किया था। (इसमें उस कारण पर भी प्रकाश पड़ता है जिससे प्रेरित होकर नागों ने गंगा को राजचिह्न बनाया।)

(३) भारशिवों ने दस अश्वमेध यज्ञ करके अवभृथ स्नान किया था, अर्थात् उन्होंने शुंगों की यज्ञों की परम्परा को प्रगति दी।

इन नागों ने भी जो मन्दिर बनवाए होंगे वे शिव-मन्दिर ही होंगे यह कल्पना सहज ही की जा सकती है। अब देखना यह है कि इस राज्य में नागकालीन शिवमन्दिरों के अवशेष कहाँ कहाँ मिलते हैं? इनके लिए भी हमें तत्कालीन नगरों के खण्डहर ढूंढ़ने होंगे। पद्मावती में अभी जितनी चाहिए उतनी खुदाई नहीं हुई है, फिर भी वहाँ नागकालीन शिव-मन्दिर होने के प्रमाण मिलते हैं। मालतीमाधव में वर्णित 'स्वर्ण बिन्दु' महादेव का स्थान भले ही नागकाल का हो परन्तु अब तक उस चबूतरे के इतने संस्करण हो चुके हैं कि उस पर विचार करना व्यर्थ है। वहाँ पर प्राप्त मानवाकार नन्दी (चित्र २१ तथा २२) की मूर्ति वहाँ के शिव-मन्दिर का स्पष्ट प्रमाण है। इसका सब शरीर मनुष्य का है केवल सिर बैल का सा है तथा यह चारों ओर कोर कर बनी हुई है। यह नन्दी निश्चित ही नागकालीन है। वायुपुराण में नागों को वृष अर्थात् शिव का साँड अथवा नन्दी कहा है।* नागों के सिक्कों पर भी वृष को स्थान मिला है। अतएव इस मूर्ति को देखकर यही कल्पना होती है कि अपने इष्टदेव शिव के सामने यह नागराज के वृषत्व के प्रतीक रूप से खड़ी की गई थी। इस मध्यम आकार की मूर्ति की गढ़न और अलंकरण अत्यन्त सुन्दर हैं। परन्तु इस नन्दी के अतिरिक्त नागकालीन शिवमन्दिर के अवशेष पद्मावती में अधिक नहीं मिले हैं।

विदिशा में शिव-मन्दिर के अस्तित्व के विषय में यहाँ कुछ विस्तार से लिखना पड़ेगा। बेसनगर में प्राप्त और अब बोस्टन के संग्रहालय में स्थित गंगा की मूर्ति किसी शिव-मन्दिर के द्वार के खंभे के ऊपर सुशोभित होगी। यह शिव-मन्दिर बेसनगर की बस्ती में न होकर उदयगिरि में था, जहाँ उस मन्दिर के द्वार में से यह मूर्ति बेसनगर के एक साधु के कब्जे में आई।‡ परन्तु मेरी स्थापना यह नही है कि यह मूर्ति उदयगिरि के किसी नागकालीन शिव-मन्दिर की है। यह तो प्रारंभिक गुप्तकालीन मूर्ति है। यहाँ यही कहना है कि उदयगिरि पर एक या एकाधिक गुहाएँ नागकालीन हैं।

उदयगिरि का अध्ययन जैसा चाहिए वैसा नहीं हुआ। वास्तव में इस पहाड़ी पर मौर्य, शुंग, नाग, प्रारंभिक गुप्त तथा पिछले गुप्तकालीन स्थापत्य तथा मूर्तिकला के उदाहरण मौजूद हैं। पहले तो इसकी ओर विद्वानों ने दृष्टि डाली ही नहीं और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा कुछ अन्य गुप्तकालीन अभिलेखों के कारण ध्यान दिया भी तो इसे गुप्तकालीन कहकर छोड़ दिया।

मेरा विचार यह है कि कम से कम वीणागुहा (कनिंघम की गुहा नं० ३) गुप्तों के पहले की है। इसके भीतर एक एक-मुख शिवलिंग (चित्र २३) स्थापित है। द्रविड़ों की लिंगपूजा ने आर्यों के 'शिष्ण' पूजा के विरोध को कब जीत लिया, यह बतलाना हमारा विषय नहीं है, परन्तु गांधार एवं मथुरा में बुद्ध की जो ध्यान-मूर्तियाँ बनीं उनमें तथा तत्कालीन शिवमूर्तियों में बहुत अधिक समानता है, यह स्पष्ट है। यह प्रभाव भी धीरे धीरे मिटा और शिव का पौराणिक रूप धीरे धीरे बढ़ा है। इस दृष्टि से इस शिवलिंग पर बनी मुखाकृति को देखा जाए तो शिव की पौराणिक कल्पना का इसमें केवल एक लक्षण—माथे पर तीसरे नेत्र का सा चिह्न है। जटाओं में चन्द्रमा का चिह्न तक नहीं है। यदि इसकी नागकालीन तथा गुप्त-कालीन एकमुख लिंगों से तुलना की जाए तो इस मूर्ति की उन सबसे प्राचीनता स्वत: सिद्ध

---

† **जायसवाल: अंधकारयुगीन भारत, पृष्ठ १८।**

‡ **कनिं०, आ० स० रि० भाग १०, पृष्ठ ४१, पर कनिंघम ने लिखा है—**'Close by, in the house of a Sadhu, were found a small lion of the Gupta period and a large figure of Ganges standing on her Crocodile, which must certainly have belonged to the Gupta age" **ये दोनों मूर्तियाँ श्री भण्डारकर महोदय बेसनगर के उत्खनन के समय अपने साथ लेते गए। गंगा की मूर्ति तो बोस्टन संग्रहालय में पहुँची और सिंह की मूर्ति का पता नहीं कहाँ है।**

होती है। भूमरा तथा खोह के एकमुख शिवलिंगों से इसकी तुलना करने पर ज्ञात होता है कि बनावट की समानता होते हुए भी वीणा गुहा का शिवलिंग उन सबमे कप रूढ़िगत है। डॉ० जायसवाल ने भूमरा तथा खोह की इन मूर्तियों को भारशिव नागकालीन माना है। उदयगिरि की अन्य गुहाओं में स्थित शिवलिंगों से तुलना करने पर भी यह सबसे प्राचीन ज्ञात होता है। इस एकमुखलिंग के मुखकी सौम्य-शान्त मुद्रा अत्यन्त आकर्षक है। जटा सिर के ऊपर जूड़े के रूप में बँधी है, कुछ बाल गले पर सामने की ओर लटक रहे हैं। गले में एक मणियों का कण्ठा पड़ा है।

बेसनगर में मिले, और अब गूजरीमहल संग्रहालय में स्थित, दो शिवलिंग (चित्र २४) भी प्रारंभिक नागकालीन ज्ञात होते हैं। इनके कानों के भारी आभरण तथा जटाओं के बाँधने का प्रकार इन्हें भरहुतआदि की शुंग-कुषाणकालीन मूर्तियों की परम्परा में रखते हैं। इनमें भी शिव के कोई पौराणिक अलंकार अथवा चिह्न नहीं हैं।

इन एकमुखलिंगों के अतिरिक्त मन्दसौर में प्राप्त हुआ अष्टमुख-शिवलिंग (चित्र २५) भी पूर्व-गुप्तकालीन है। यह अष्टमुख शिवलिंग शिव-मूर्तिनिर्माण के इतिहास में अद्वितीय है। प्राचीन अथवा अर्वाचीन शिवलिंगों में एकमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, शिवलिंग बहुत पाए जाते हैं, परन्तु अष्टमुख शिवलिंग अब तक कहीं नहीं मिला है। ग्वालियर पुरातत्त्व-विभाग के अधिकारियों ने मन्दसौर (प्राचीन दशपुर) के पास एक नदी के किनारे पानी में धोबियों को इस विशाल प्रस्तर-मूर्ति पर कपड़े धोते पाया और इसे अपने अधिकार में लिया। इसका व्यास ४ फीट से अधिक ही है और जब यह पूरी होगी तो प्रायः ७ या ८ फीट ऊँची होगी। इसको मन्दसौर के कुछ शिव-भक्तों(?)ने विभाग से छीन लिया और उसके प्राचीन मुखों को छीलकर नवीन मुख बना डाले। यदि पुरातत्त्व विभाग में इसका चित्र सुरक्षित न होता तो प्राचीन मूर्तिकला के विद्यार्थी के लिए यह एक दुखद कहानी ही रह जाती। इस शिवलिंग पर अत्यन्त भव्य शिव के त्रिनेत्रयुक्त अष्टमुख बने हुए हैं। जो मुख चित्र में दिखाई देते हैं वे अत्यन्त सौम्य एवं सुन्दर हैं। जटाओं की बनावट तथा कानों का आभरण पूर्व-गुप्तकालीन हैं।

यद्यपि अष्टमुख शिव की कोई अन्य मूर्ति नहीं मिली है फिर भी वह है शास्त्र सम्मत ही। शिव के आठ नाम होने का उल्लेख शतपथ एवं कौशीतकी ब्राह्मणों में है। वहाँ शिव को उषा का पुत्र बतलाया गया है और उनको प्रजापति द्वारा आठ नाम देने का उल्लेख है। इनमें आठ नाम रुद्र, शर्व, उग्र, अशनि, भव, पशुपति, महादेव और ईषाण दिए हुए हैं। पहले चार नाम शिव की संहार-शक्ति के प्रतीक हैं और पिछले चार कल्याणकारी वृत्ति के। वायुपुराण में भी शिव के अष्टनामों का उल्लेख है।

दशपुर (मन्दसौर) का उल्लेख उषवदात के नासिक के शिलालेख* में है। वहाँ पर उषवदात ने चतुःशाल वसध (सराय) बनवाई थी। उषवदात उज्जैन पर अधिकार करनेवाले महाक्षत्रप नहपान (ई० पू० ८२–७७) का दामाद था। तात्पर्य यह कि उस प्राचीन काल में भी दशपुर (मन्दसौर) प्रख्यात था। नागों के आराध्यदेव शिव की यह अद्वितीय मूर्ति दशपुर में बनी हो, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।

यह भी अनुमान किया जा सकता है कि दशपुर का यह अष्टमूर्ति-शिव-मन्दिर उस प्राचीनकाल में अत्यधिक प्रसिद्ध था। कालिदास ने इस अष्टमूर्ति शिव से अत्यधिक परिचय होने का प्रमाण अपने ग्रंथों में दिया है। अपने पूर्वतम नाटक मालविकाग्निमित्र के मंगलाचरण में वे लिखते हैं:—

अष्टाभिर्यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिर्बिभ्रतो नाभिमानः

आगे अभिज्ञान शाकुन्तल के मंगलाचरण में तो महाकवि ने शिव की इस अष्टमूर्ति का अर्थ और भी स्पष्ट कर दिया है:—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री।
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्॥
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

---

* ए० इ० भाग ८, पृष्ठ ७८।

काव्य में हमें रघुवंश में इन अष्टमूर्ति शिव का उल्लेख मिलता है। रघुवंश के सर्ग २ के ३५वें श्लोक में राजा दिलीप से सिंह कहता है :—

कैलासगौरं वृषमारुरुक्षोः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।
अवेहि मां किंकरमष्टमूर्तेः कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम्॥

कालिदास को यदि ई० पू० ५७ के मालवगणाधिपति विक्रमादित्य का समकालीन माना जाए तब तो यह स्पष्ट होता है कि मालवगण की सभा में अभिनय किए जानेवाले अभिज्ञान शाकुन्तल में अष्टमूर्ति के उल्लेख का कारण यह प्रसिद्ध अष्टमूर्ति शिव का मन्दिर होगा। यदि नाटककार और काव्यकार कालिदास दो माने जाएँ तब भी इस स्थापना की पुष्टि ही होती है। ई० पू० का यह शिव-मन्दिर फिर अनेक शताब्दियों तक प्रसिद्ध रहा, यह मानना पड़ेगा। जिन्होंने काव्यकार एवं नाटककार कालिदास को गुप्तकालीन सिद्ध माना है उन विद्वानों के समक्ष भी इस स्थापना पर कोई आघात नहीं पहुँचता कि यह शिवलिंग पूर्व गुप्तकालीन है। वह गुप्तकाल में भी प्रसिद्ध रहा, और अपने मेघ को दशपुर होकर ले जानेवाले कालिदास को इन अष्टमूर्ति के प्रति उतनी ही श्रद्धा थी जितनी महाकाल पर।

उदयगिरि में एक नीम के नीचे एक नन्दी की मूर्ति (चित्र २६) मिली है, जो अब भेलसा संग्रहालय में रखी हुई है। इसकी बनावट पूर्व गुप्तकालीन है। यह भी उदयगिरि के किसी नागकालीन शिव-मन्दिर का प्रमाण है।

उदयगिरि में नागकालीन अन्य कौन कौनसी मूर्तियाँ हैं, यह अभी पूर्ण रूप से निश्चित होना है।

शिवनन्दी को कनिष्क ने जीत लिया था और बहुत समय तक पद्मावती पर कुषाणों का अधिकार रहा था। कुषाण कला तथा इस स्थान पर प्राप्त कुछ मूर्तियों में समानता हो, यह बहुत सम्भव है। उदाहरण के लिए मथुरा संग्रहालय में स्थित छारगाँव में प्राप्त नाग की मूर्ति की तुलना पवाया में प्राप्त नागराज (चित्र २७ तथा २८) की मूर्ति से की जा सकती है। दुर्भाग्य से पवाया की नागराज की मूर्ति बहुत अधिक टूटी हुई है, फिर भी खड़े होने की रीति, कमर पर बँधे हुए वस्त्र की गाँठ लगाने की रीति तथा सिर के ऊपर जानेवाले अहिछत्र में बहुत अधिक समानता है। मथुरा की इस मूर्ति पर हुविष्क के राज्यकाल के चालीसवें वर्ष के उल्लेखयुक्त अभिलेख हैं। वह ईसवी सन् ११८ की बनी हुई है।

वर्तमान गिर्द सूबात के कार्यालय के पास सड़क के किनारे एक झोंपड़ी में मथुरा के लाल पत्थर की एक मानवाकार बुद्ध-मूर्ति (चित्र २९) का धड़ प्राप्त हुआ है। ग्वालियर में ऐसा पत्थर कहीं नहीं मिलता और न यह मूर्ति ही किसी मन्दिर आदि ऐसे स्थल पर थी कि जिसे उसका प्राचीन स्थल माना जा सके। कुषाणकाल की यह मूर्ति अपने लाल पत्थर के अतिरिक्त वस्त्र की धारियों के कारण अपने आपको गांधार और मथुरा पर राज्य करनेवाले कुषाण राजाओं के कारीगरों की कृति घोषित करती है। ज्ञात होता है कि ग्वालियर में यह प्रवासी मूर्ति-खण्ड बाहर से आया है।

नागकाल की हमारी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मूर्ति पवाया में प्राप्त मणिभद्र यक्ष (चित्र ३०) की मूर्ति है। मूर्तिकला की दृष्टि से तो यह प्राग्-मौर्यकालीन, विशालकाय एवं भद्दे पैरों की मूर्तियों की परम्परा के अविशृंखल रूप से चलने का प्रमाण प्रस्तुत करती है और ऐतिहासिक दृष्टि से अपनी चरण-चौकी के लेख द्वारा मूर्तिकला के इतिहास में एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करती है। इसमें लिखा है कि इस मूर्ति का निर्माण मणिभद्र पूजक गोष्ठी ने स्वामिन् शिवनन्दी के राज्यकाल के चौथे वर्ष में कराया था।

मातृका, नाग, यक्ष आदि की पूजा का मूल श्री आनन्द कुमारस्वामी द्राविड़ सभ्यता में मानते हैं।* परन्तु यह तो निश्चित है कि बौद्धों में यक्षपूजा का बहुत प्रचार था। साँची, भरहुत आदि बौद्ध स्तूप की वाड़ों और तोरणों पर अनेक यक्ष और यक्षणियों की मूर्तियाँ बनी है, परन्तु वे पारिषदों के रूप में ही हैं। स्वतंत्र रूप से भी यक्षों की पूजा होती रही है। प्राचीन पद्मावती में परमशैव नागों की प्रजा इन यक्षों की पूजा कर रही थी, यह इस मूर्ति से प्रमाणित है। यह मूर्ति मानवाकार से कुछ बड़ी है। बनावट यद्यपि बेडौल है फिर भी प्रभावशाली है। मूर्ति की बनावट में कोई अलौकिकता नहीं है। दो हाथ हैं जिनमें एक में सम्भवतः थैली है, वह कोहनी से टूट गया है। थैलीवाले बाएँ हाथ के मूल में कंधे पर तीन बार लिपटा हुआ मोटा दुपट्टा है, गले में जनेऊ है। बड़ा मोटा मोतियों का कण्ठा पीछे मोटे मोटे फुन्दने से बँधा हुआ

*** हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, पृष्ठ ५।**

है। ठोड़ी के ऊपर मुंह टूट गया है, फिर भी ठोड़ी के नीचे मुटाई के कारण दुलेट स्पष्ट दिखाई देती है। बड़े पेट के नीचे घुटने तक आनेवाली धोती कुछ बेडौल ढंग से बँधी हुई है। सामने की पट्टी और पीछे की काँछ पंजों तक लटकती है। पैर सूजे से भद्दे हैं। इस मूर्ति में सुकुमार सौन्दर्य चाहे न हो परन्तु विशालता और प्रभावोत्पादन की शक्ति है तथा यह निम्न मध्यवर्ग की पूजा की मूर्ति ज्ञात होती है।

बेसनगर का कुबेर (चित्र ३१) अधिक सुन्दर एवं सुडौल है। यह नागकाल की अन्तिम सीमा को छूता हुआ ज्ञात होता है। इसके बाएँ हाथ में मुद्राओं की बनी थैली है, दायाँ टूट गया है और नीचे घुटनों से पैर भी टूट गए हैं। सम्भव है यह मूर्ति प्रारंभिक गुप्तकाल की हो। तेरही की तथा कुछ अन्य स्थानों की गूजरीमहल संग्रहालय में सुरक्षित बड़े पेट की सुरापायी कुबेर की मूर्तियाँ (चित्र ३२) इसी परम्परा की हैं। इनमें कुषाण-प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित है। मथुरा संग्रहालय में रखी सुरापायी कुबेर की मूर्ति की तुलना करने पर ग्वालियर संग्रहालय की सुरापायी कुबेर की बनावट की समानता स्पष्ट होगी।

भेलसे में एक अत्यन्त सुन्दर मूर्ति-खण्ड (चित्र ३३ तथा ३४) प्राप्त हुआ है। आजकल लोग उसे 'सीतला माता' कहकर पूज रहे हैं। परन्तु यह यक्ष और यक्षणियों की मूर्ति ज्ञात होती है। एक ओर यक्ष है और दूसरी ओर उसकी पीठ से पीठ मिलाए यक्षिणी है। यह मूर्ति-खण्ड मूल में किसी बाड़ या और किसी ऐसी ही जगह लगी होगी, जैसा कि उसके नीचे की ठुल्ली से ज्ञात है। यह मूर्ति भरहुत की परम्परा की है और बेसनगर के किसी नागकालीन अथवा कुछ पूर्व के निर्माण का भाग होगी। यक्षिणी हाथों में कोहनी तक तथा पैरों में घुटने तक कड़े पहने है। कमर पर करधनी है। मूर्ति प्रायः नग्न है, माथे पर अवश्य कोई कपड़ासा बँधा हुआ है। बायाँ हाथ कमर पर रखा है, दाएँ में कमल लिए है। गले में स्तनों के बीच में होता हुआ हार पड़ा है। कानों के आभरण अत्यन्त भारी हैं। एक दुपट्टा हाथों में पड़ा है। दूसरी ओर पुरुष की शिरोभूषा और कानों के आभरण स्त्री से प्रायः मिलते जुलते हैं। गले में बहुत चौड़ा कण्ठा है। हाथों में भी बहुत ऊपर तक गहने पहने है। मणिभद्र यक्ष की मूर्ति जैसी धोती बँधी है। यह मूर्ति दाएँ हाथ में कमल का फूल लिए है और बायाँ हाथ कमर पर रखा है।

इस काल की मूर्तियों में हमें साधारण सामाजिक जीवन का अंकन करनेवाली मूर्तियाँ नहीं मिली हैं, अतएव तत्कालीन वेश-भूषा आदि पर हम अधिक प्रकाश नहीं डाल सकते। परन्तु इन मूर्तियों के सहारे हम यह तो कह ही सकते हैं कि शैव राजाओं के राज्यकाल में प्रजा अपने मन के इष्टदेव को पूजने को स्वतंत्र थी, हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान हो रहा था और मूर्तिकला गुप्त एवं प्रारंभिक मध्यकालीन श्रेष्ठता की ओर बड़े वेग से प्रगति कर रही थी। नागराजाओं ने जहाँ उस कला के लिए भूमि तैयार की वहाँ प्रजा ने प्राग्-मौर्यकालीन लोककला की परम्परा की कृतियाँ भी निर्मित कराईं।

गुप्त काल

--३२० ई० से ६०० ई० --

ईसा की चौथी शताब्दी के प्रारंभ में साकेत-प्रयाग के आसपास श्रीगुप्त नामक एक छोटासा राजा हुआ। उसके पुत्र का नाम था घटोत्कच। घटोत्कच का पुत्र चन्द्र अपने आपको चन्द्रगुप्त कहता था। उसने प्रसिद्ध लिच्छवि गण-तंत्र की कन्या कुमारदेवी से विवाह करके गुप्तवंश के उस महान् साम्राज्य की नींव डाली जिसके अधीन प्रायः सम्पूर्ण भारतवर्ष हो गया और भारतीय संस्कृति तथा कला अपने चरम विकास को पहुँची। चन्द्रगुप्त (प्रथम) ने लिच्छवियों की सहायता से पाटलिपुत्र को जीत लिया, परन्तु उसे पीछे मगध छोड़ देना पड़ा। उसके दिग्विजयी पुत्र समुद्रगुप्त ने पहले हल्ले में ही मगध और नागों के राज्य को अपने अधीन कर लिया और फिर सम्पूर्ण भारत को अपनी विजय-वाहिनी के वशीभूत कर एवं 'शक-मुरंडों' को पराभूत कर अश्वमेघ यज्ञ करके 'श्रीविक्रम*' एवं 'पराक्रमांक' विरुद ग्रहण किए। इस महान् विजेता का 'काव्य कविमति के विभव का उत्सरण' करता था और वह संगीत-कला में तुंबुरु, नारद आदि को भी लज्जित करता था।† इस प्रकार उसके समय से ही कला एवं साहित्य को गुप्तों द्वारा प्रश्रय मिलना प्रारंभ हुआ। अपनी कन्या प्रभावती गुप्ता का विवाह वाकाटक रुद्रसेन से करके इन्होंने गुप्त साम्राज्य का राजनीतिक महत्त्व ही नहीं बढ़ाया, साथ ही वाकाटकों के सांस्कृतिक वैभव से भी नाता जोड़ लिया।

साम्राज्य स्थापन और विदेशी शकों के उन्मूलन का शेष कार्य किया चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने, और साढ़े चारसौ वर्ष पूर्व हुए विक्रमादित्य के पौरुष के प्रतीक 'विक्रमादित्य' नाम को विरुद के रूप में ग्रहण किया। विदिशा के पास डेरा डालकर उसने पश्चिमी क्षत्रपों का भी उन्मूलन किया। उस समय चन्द्रगुप्त वहाँ पृथ्वी को जीतने के उद्देश्य से आया था, ऐसा उदयगिरि के शाब वीरसेन के गुहा-लेख से प्रमाणित है।‡ हमारे इस प्रदेश के राजा गणपति नाग आदि को जीतकर समुद्रगुप्त ने जो सम्बन्ध स्थापित किया था, वह दृढ़तर हो गया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने जो विस्तृत

---

* देखिये, मेरी पुस्तक 'विक्रमादित्य', पृष्ठ २९, पाद टिप्पणी।

† प्रयाग स्तम्भ लेख, फ्लीट, गुप्त अभिलेख, पृष्ठ ६ ।

‡ फ्लीट: गुप्त अभिलेख, पृष्ठ ३५।

साम्राज्य स्थापित किया उसका वर्णन महरौली लौह-स्तंभ की भाषा में नीचे दिया जाता है :—

"वंगदेश में एकत्रित होकर सामना करनेवाले शत्रुओं को रण में (अपनी) छाती से मारकर हटाते हुए जिसके खड्ग से भुजा पर कीर्ति लिखी गई, युद्ध में सिन्धु के सात मुखों को उल्लंघन कर जिसने बाह्लीकों को जीता, जिसके पराक्रम के पवनों से दक्षिण समुद्र भी अब तक सुवासित हो रहा है।"‡

इस महान् साम्राज्य का हृदय था अवन्ति और विदिशा के आसपास का प्रदेश। दशपुर में चन्द्रगुप्त का स्थानीय शासक नरवर्मन् था जो अपने आपको 'सिंहविक्रमगामिन्' लिखता है और इस प्रकार अपने आपको चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का सेवक घोषित करता है। श्योपुर जिले के हासलपुर ग्राम में किसी नागवर्मन् के राज्य उल्लेख है जो गुप्तों का ही मांडलिक होगा। ‡

इस साम्राज्य का पूर्ण उपभोग और अत्यन्त विकसित प्रणाली से शासन किया सम्राट् कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य ने। कुमारगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य डगमगा उठा। उत्तर-पश्चिम से अब हूणों के सैन्य-समुद्र के थपेड़े लगना प्रारंभ हुए और मालव-प्रदेश में 'पुष्यमित्र' नाम गणतंत्र मगध-साम्राज्य का विरोधी हो गया। ई० सन् ४५५ में स्कन्दगुप्त ने इन दोनों संकटों पर विजय पाई और गुप्तों की 'विचलित कुललक्ष्मी' का 'स्तम्भन'* करके पुनः विक्रमादित्य विरुद धारण किया।

परन्तु यह हूणों का समुद्र फिर उमड़ पड़ा और गुप्त-साम्राज्य उसके प्रवाह में बह गया। स्कन्दगुप्त के पश्चात् ग्वालियर-राज्य की कला के इस इतिहास में गुप्तवंश के 'बुधगुप्त' उल्लेखनीय हैं, सम्भवतः जिनका माण्डलिक नरेश माहिष्मती का सुबन्धु था जिसने दासिलकपल्ली नामक ग्राम 'कलयन विहार' (बाग-गुहा-समूह) को दान दिया था।†

बुधगुप्त के पश्चात् ही तोरमाण हूण ने उत्तर-पश्चिम के गांधार-राज्य से गुप्त-साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया और मालवा उसके अधिकार में चला गया। तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल का राज्य ग्वालियर-गढ़ तक था, इसका प्रमाण किसी मात्रिचेट द्वारा बनवाए ग्वालियर-गढ़ के सूर्य-मन्दिर के शिलालेख से मिलता है।‡ मिहिरकुल शैव था। उसने बुद्ध धर्म का अत्यधिक विरोध करके उसका उन्मूलन किया। उस आक्रमणकारी हूण पर यद्यपि भानुगुप्त बालादित्य ने विजय प्राप्त करली, फिर भी उसने उसका बध नहीं किया और उसे काश्मीर, गान्धार आदि पर अत्याचार करने के लिए छोड़ दिया।

गुप्त सम्राटों की इस कमजोरी से त्राण पाने के लिए 'जनता के नेता' मालव-वीर यशोधर्मन्-विष्णुवर्धन ने तलवार उठाई। उसने आततायी हूणों का पूर्णतः विनाश कर दिया और 'लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) से महेन्द्रपर्वत (उड़ीसा) तक तथा हिमालय से पश्चिमी समुद्र तक एवं उन प्रदेशों पर, जिन पर गुप्तों और हूणों का भी अधिकार न हुआ था, अपने अधिकार में कर लिए और केवल पशुपति के चरणों में सिर झुकानेवाले मिहिरकुल से अपने पादपद्मों की अर्चा कराई।‡ इन विजय-गाथाओं से युक्त स्तम्भ आज भी सौंदनी में (मन्दसौर के पास) पड़े हैं।

गुप्तकालीन मूर्तिकला का विवेचन करते समय यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि यह प्रदेश गुप्त-साम्राज्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहा है, अतएव गुप्तकला के अत्यन्त श्रेष्ठ उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलने के साथ ही वह अत्यधिक विस्तृत सीमा में मिलते हैं। उदयगिरि, बेसनगर (विदिशा), मन्दसौर (दशपुर), बडोह-पठारी (वटोदक), तुमेन (तुम्बवन), बाग (कलयन), पवाया (पद्मावती), नाम प्राचीन अभिलेखों में प्रसिद्ध हैं और साथ ही काकपुर‡, महुआ‡, चुर्ली‡, मकनगंज‡ पारौली (पाराशरग्राम) पढ़ाबली (धारौन) §, आदि अनेक स्थलों पर गुप्तकालीन मूर्तियाँ एवं मन्दिर प्राप्त हुए हैं।

---

‡ फ्लीटः गुप्त अभिलेख, पृष्ठ १३९। ‡ देखिए मेरी पुस्तक 'ग्वालियर राज्य के अभिलेख'।

* फ्लीटः गुप्त अभिलेख, पृष्ठ ५२। † विक्रम-स्मृति-ग्रंथ, पृष्ठ ६४९। ‡ फ्लीटः गुप्त अभिलेख, पृष्ठ १६२।

‡ फ्लीटः गुप्त अभिलेख, पृष्ठ १४६। ‡ ग्वालियर पुरातत्त्व रिपोर्ट संवत् १९८८ पृष्ठ ६।

‡ ग्वा० पु० रि०, संवत् १९९१ पृष्ठ ५। ‡ वही, संवत् १९८६ पृष्ठ १४।

‡ वही, संवत् १९८६ पृष्ठ १८-१९। § कनिंघम आ० स० ई० पृष्ठ १०५, १०७।

गुप्त-सम्राट् प्रायः सभी 'परम भागवत' थे, परन्तु उनकी धार्मिक नीति इतनी उदार थी कि उनके अधीन बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त सभी मत विकास पा सके। यही कारण है कि इस काल में प्रायः सभी सम्प्रदायों की सुन्दरतम मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि गुप्त-सम्राट् कलाओं को आश्रय देते थे। इनके काल में काव्य, संगीत, चित्र-कला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य सब का ही पूर्ण विकास हुआ। तत्कालीन महाकवियों के काव्यों में भाषा का जो परिमार्जन एवं कल्पना की जो प्रशस्त उड़ान दिखाई देती है उसके दर्शन उत्कीर्णक की छैनी और चित्रकार की तूलिका में भी होते हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण के रूप में उदयगिरि की गुहा नं० ६ के द्वार के बाईं ओर बने हुए विष्णु की प्रतिमा का उल्लेख किया जा सकता है। उसमें विष्णु के आयुध गदा और चक्र को स्त्री और पुरुष के रूप में बतलाया गया है।

गुप्तकालीन कलाकार सौन्दर्य का मूल-तत्त्व पूर्णतः समझ गया था। मानव-शरीर का ऐसा सुगढ़ एवं समानुपात मूर्तिकरण गुप्तों के पूर्व अथवा उनके पश्चात् कम हुआ है। अलंकारों का उपयोग इतने संयत ढंग से किया गया है कि उससे मूर्ति के सौन्दर्य में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। गुप्तकाल की अत्यधिक उन्नत प्रसाधन कला एवं सुरुचिपूर्ण सामाजिक जीवन का प्रतिबिम्ब मूर्तिकला में दिखाई देता है।

गुप्तकाल के पूर्व प्रचलित मूर्तिकला के अलंकरणों एवं अभिप्रायों का गुप्त-मूर्तिकार ने पूर्ण उपयोग किया और अपने उर्वर एवं सुसंस्कृत मस्तिष्क से उसकी अत्यधिक वृद्धि भी की। अशोक के स्तंभों की कारीगरी, नागों की गंगा (जिसके साथ उसने यमुना को जोड़ दिया), ताड़, नाग, सबको उसने आत्मसात् किया। विविध धर्मों के अनुयायियों के लिए विष्णु और उनके अवतार, अनेक शक्तियाँ, शिव, शिव-परिवार, बुद्ध, बोधिसत्त्व, तीर्थंकर सबका अंकन गुप्तकालीन मूर्तिकार ने अत्यन्त अलौकिक रूप से किया। साथ ही तत्कालीन सामाजिक जीवन के अनूठे अंकन भी किए। कहीं भी कला की श्रेष्ठता में बाधा नहीं आई है।

पश्चिमी यथार्थवादी अंकनों से गुप्तकलाकार बहुत दूर रहा है। उसका उसको स्पर्श भी नहीं है। उसकी कृतियाँ पूर्णतः पूर्वीय (भारतीय) आदर्शवाद से ओतप्रोत हैं। वास्तव में कल्पना और आदर्शवाद गुप्त मूर्तिकला के सौन्दर्य-साधन के प्रधान अंग हैं।

गुप्तकालीन मूर्तिकला के उदाहरणों की प्रचुरता एवं उसके विषय की अनेकरूपता को देखते हुए उसका विवेचन केवल विषयों में बाँटकर ही किया जा सकता है। हम आगे निम्नलिखित विभागों में बाँटकर इस राज्य में प्राप्त गुप्तकालीन मूनिकलाके उदाहरणों पर प्रकाश डालेंगेः—

(१) विष्णु एवं उनके अवतारों की मूर्तियाँ।
(२) शिव-मूर्तियाँ।
(३) अन्य देवी-देवता, गणेश, स्कन्द, पार्वती, ब्रह्मा, मातृकाएँ, गंगा-यमुना, यक्ष, गंधर्व आदि।
(४) बौद्ध मूर्तियाँ।
(५) जैन मूर्तियाँ।
(६) द्वारपाल, मिथुन, नृत्य-दृश्य, पशु-पक्षी, बेल, बूटे आदि।
(७) मृण्मूर्तियाँ।
(८) स्तम्भशीर्ष

(१) विष्णु मूर्तियाँ—गुप्त सम्राटों का एक अत्यन्त प्रिय विरुद 'परम भागवत' था। विष्णु के वाहन गरुड़ को गुप्त-सम्राटों ने अपने ध्वज के शीर्ष पर स्थान दिया था, जैसा कि उनके अनेक सिक्कों में बनी ध्वजाओं पर अंकित है। उनके काल में विष्णु और उनके अवतारों की अनेक लोकोत्तर प्रतिमाएँ बनें, यह स्वाभाविक ही है। गुप्तकालीन प्रधान आठ विष्णु मूर्तियाँ निम्नलिखित स्थानों में प्राप्त हुई हैं:—

१. शेषशायी विष्णु—उदयगिरि गुहा नं० १३।

२. खड़ी विष्णु प्रतिमाएँ—उदयगिरि गुहा नं० ६ (सनकानिक गुहा)।

४. खड़ी विष्णु प्रतिमाएँ––उदयगिरि गुहा नं० ९-१२ (यहाँ की विष्णु मूर्ति का एक धड़ गूजरी महल संग्रहालय में रखा है।)

१. चारों ओर कुरेदकर बनी विष्णु प्रतिमा––पवाया।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य स्वयं उदयगिरि पधारे थे। परिणामतः यहाँ पर उनकी अप्रतिम विष्णु-भक्ति के प्रमाण की प्रतिमाएँ मिलती हैं। इनमें शेषशायी विष्णु (चित्र ३५) की बारह फुट लम्बी विशाल प्रतिमा प्रधान है। चतुर्भुज विष्णु शेषनाग की कुण्डलियों पर लेटे हुए हैं। दाहिनी ओर के ऊपर के हाथ से सिर को सहारा दिए हुए हैं। अन्य हाथों में क्या था यह ज्ञात नहीं होता। मुख का ऊपरी भाग बिलकुल टूट गया है और प्रायः सभी मूर्ति पर काल का प्रभाव पड़ने से अस्पष्टता आगई है। विष्णु के गले में एक छोटासा हार और घुटनों तक वैजयन्ती माला पड़ी हुई है। यह वैजयन्ती माला गुप्तकालीन सभी मूर्तियों पर प्रभावशाली रूप में दिखाई देती है। आगे वर्णित नृसिंह की मूर्ति में यह वैजयन्ती माला दाहिने हाथ के बाहुमूल पर स्पष्ट है। फिर घुटनों के नीचे तक का भाग टूट गया है, परन्तु घुटनों के नीचे दोनों पैरों पर वह सुन्दर रूप से स्पष्ट दिखाई देती है। मूर्ति के पीछे केशों के ऊपर उसका आकार अब भी पूर्ण रूप से सुरक्षित है। इसी प्रकार वराह मूर्ति में यह वैजयन्तीमाला बहुत ही भव्य रूप में आदिवराह के घुटनों के नीचे तक लटक रही है। पवाया की तथा हेलियोदोर स्तम्भ के पास मिली शुंगकालीन विष्णु-मूर्ति में वह इसी रूप में विद्यमान है। वास्तव में यह वैजयन्ती माला, चार हाथ और कौस्तुभ-मणि युक्त छोटा हार विष्णु-मूर्ति की प्रधान पहिचान हैं।

शेषशायी की इस प्रधान मूर्ति के ऊपर कुछ उभरी हुई अस्पष्ट नौ मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। पहली दो मूर्तियाँ अत्यन्त अस्पष्ट हैं। उनके अवशेषों से वह सम्भवतः ब्रह्मा और लक्ष्मी के आकार ज्ञात होते हैं। तीसरी मूर्ति गरुड़ की है जो सम्पूर्ण रूप से पक्षी की आकृति में अंकित है। गरुड़ के पश्चात् एक राजपुरुष और रानी का अंकन किया गया है, जिनके पीछे चार अन्य व्यक्ति हैं। अनुमान यह है कि यह राजा और रानी स्वयं सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एवं ध्रुवदेवी हैं। वास्तव में जैसा आगे वराह-मूर्ति के वर्णन में और भी स्पष्ट होगा, उदयगिरि की इन विष्णु-मूर्ति-युक्त गुहाओं में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य इतना अधिक व्याप्त है कि वराह-मूर्ति को चन्द्रगुप्त-वराह माना गया है; अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि ये राजा-रानी की मूर्तियाँ भी उनकी ही प्रतिकृतियाँ हैं। शेषशायी की मूर्ति के नीचे भी दो व्यक्ति अंकित हैं, परन्तु अत्यन्त अस्पष्ट हैं।

उदयगिरि की गुहा नं० ६ के द्वार के दोनों ओर विष्णु की खड़ी प्रतिमाएँ और उनमें से विशेषतः दाहिनी ओरवाली मूर्ति (चित्र ३६) गुप्तकालीन मूर्तिकला में अपना विशेष स्थान रखती है, इसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। यद्यपि ऋतुओं तथा काल के प्रभाव से यह मूर्ति कुछ अस्पष्ट हो गई है परन्तु इसकी विशेषताएँ आज भी प्रत्यक्ष हैं। माथे का सुन्दर मुकुट, गले का कौस्तुभ-मणि का हार तथा घुटनों के नीचे तक की वैजयन्ती माला तत्कालीन विष्णु-मूर्तियों की भाँति सुन्दर हैं ही, शरीर का गठन भी पूर्णतः 'गुप्त' है। ऊपर के दोनों हाथ कमर के पास गए हैं और उनमें क्या है, यह स्पष्ट नहीं दिखता। परन्तु इसकी विशेषता नीचे के दोनों हाथ और उनके आयुध हैं। कनिंघम ने लिखा है* कि इस मूर्ति के दोनों ओर विष्णु की दोनों पत्नियाँ खड़ी हैं। अन्य विद्वान भी ऐसा ही कुछ मानकर चलते हैं, यहाँ तक कि हमारे मित्र, ग्वालियर पुरातत्त्व विभाग के उपाध्यक्ष डॉ० देवेन्द्र राजाराम पाटील ने भी बाईं ओर स्त्री-मूर्ति मानकर लिख दिया है कि 'गदा नहीं बनाई गई है'†। वास्तव में बात यह है कि कल्पना के धनी गुप्तकालीन मूर्तिकार ने विष्णु की गदा की स्त्री के रूप में कल्पना की है और चक्र को पुरुष के रूप में। ये दोनों आयुध इस प्रकार विष्णु-प्रतिमा के दाएँ तथा बाएँ हाथ के नीचे खड़े हैं। द्वार की दाहिनी ओर की विष्णु-प्रतिमा छोटी है, यद्यपि वह अभी तक अधिक रक्षित है। इसमें नीचे के बाएँ हाथ की गदा प्रकृत अस्त्र के रूप में बतलाई है। नीचे का बाएँ हाथ का चक्र डमरू के आकार के स्टूल पर रखा है।

उदयगिरि की गुहा नं० ९-१२ तक की खड़ी चार विष्णु-प्रतिमाओं में कोई उल्लेखनीय बात नहीं है।

---

* **आ० स० ई० भाग १०, पृष्ठ ५०।**

† **देखिए विक्रम-वाल्यूम (अंग्रेजी) में डॉ० पाटील का लेख।**

पवाया में जो विष्णु मन्दिर के उल्लेख मिले हैं वे स्थापत्य की दृष्टि से अपना विशेष स्थान रखते हैं। इस प्रकार के अवशेष अहिछत्रा के उत्खनन में भी प्राप्त हुए हैं। वास्तव में ये मन्दिर ऊँचे ऊँचे चबूतरों पर स्थित थे। इन चबूतरों पर लकड़ी के मन्दिर बनाए जाते होंगे जिनमें प्रतिमाएँ स्थापित रहती होंगी। पवाया में प्राप्त विष्णु-प्रतिमा (चित्र ३७) इसी मन्दिर में स्थापित थी, ऐसा मेरा अनुमान है। सम्भव यह भी है कि यह प्रतिमा गुप्तकाल से कुछ पूर्व की हो। उदयगिरि की विष्णु-प्रतिमाओं की अपेक्षा यह अधिक सरल है।

विष्णु के अवतारों में ग्वालियर-राज्य में हमें गुप्तकालीन कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन (त्रिविक्रम सहित) की मूर्तियाँ मिली हैं। मीन, भृगुपति, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि अवतारों की गुप्तकालीन मूर्तियाँ इस राज्य में नहीं मिलीं। इनमें से अनेक की तो विष्णु के अवतार के रूप में उस समय तक कल्पना ही नहीं हुई थी, शेष को मूर्तिकार ने उस समय तक अपनी छैनी का आधार नहीं बनाया था। यद्यपि पूर्व-मध्यकाल में बड़ोह में दशावतार मन्दिर की मूर्तियाँ गुप्त-कला की परम्परा में दशावतार को प्रस्तुत करती हैं।

कूर्मावतार का सम्बन्ध अमृत-मंथन की कथा से है। अमृत-मंथन का यह दृश्य उदयगिरि की गुहा नं० १८ के द्वार के ऊपर है और दूसरा पवाया के द्वार के तोरण-प्रस्तर पर अंकित है। कला की दृष्टि से इनमें दृष्टव्य कुछ भी नहीं है।

वराह अवतार का अंकन उदयगिरि की गुहा नं० ५ में किया गया है। यह लोकोत्तर सौन्दर्ययुक्त प्रतिमा (चित्र ३८) गुप्तकला ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय कला का अप्रतिम उदाहरण है। मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण के वर्णन में गिरा को नयन की और नयन को गिरा की सहायता की आवश्यकता होती है। इस नयन की तत्त्व की पूर्ति हम चित्र द्वारा करते हैं। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित है कि उत्तम से उत्तम चित्र भी इस प्रतिमा के सौन्दर्य को, उसकी भव्यता एवं सजीवता को शतांश भी अंकित नहीं कर सकता। और फिर कलाकार ने जो वातावरण मूर्ति के चारों ओर अंकित किया है, वह एक चित्र में आ भी नहीं सकता। अतः यहाँ 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' की भावना सार्थक होती है।

यह विशाल मूर्ति लगभग बारह फीट ऊँची है। चतुर्भुज न होकर यह मूर्ति दो हाथों की है। सारा शरीर मानवाकार है केवल मुख वराह का है। दन्तकोटि पर पृथ्वी स्थित है। बायाँ हाथ बाएँ पैर के उठे हुए घुटने पर रखा है और दायाँ हाथ कमर पर। बायाँ पैर शेषनाग की कुण्डली पर स्थित है, जिसका सिर और हाथ मानवाकार हैं और जो इस विशाल प्रतिमा को हाथ जोड़े हुए हैं। गले में विशाल वैजयन्ती माला है, हाथों में कड़े हैं और धोती की पटलियाँ लटक रही हैं। सारे शरीर की बनावट इतनी दृढ़ता और ओज से पूर्ण है कि अंग प्रत्यंग से शक्ति और सजीवता फूटी पड़ती है। पृथ्वी स्त्री-आकृति की है। उसका मुख टूट गया है, परन्तु शेष सम्पूर्ण शरीर अखण्ड है जो मूर्तिकार के अनुपम सौन्दर्य-निर्माण का साक्षी है। पृथ्वी की तुलनात्मक लाघवता जहाँ विष्णु के इस अवतार की महानता की द्योतक है वहाँ उसके शरीर की आकृति अपने आपको पूर्णतः वराह के आश्रित कर देने का भाव व्यंजित कर रही है। पृथ्वी के शरीर पर अलंकार और वस्त्र अत्यन्त सूक्ष्म, परन्तु सुन्दर एवं सुरुचिपूर्ण हैं।

पुराणों में वर्णन है कि सृष्टि के प्रारंभ में भगवान् ने वराह का अवतार धारण कर पृथ्वी का सागर के गम्भीर गर्त्त से उद्धार किया था। इसी दृश्य का अंकन यहाँ है। पृष्ठभूमि की लहरें और शेषनाग समुद्र का अस्तित्व प्रगट करते हैं। पृथ्वी के इस उद्धार पर सम्पूर्ण देव-सृष्टि आनन्द मना रही है। ब्रह्मा, शिव, यक्ष, किन्नर, राक्षस सभी इस महान् वराह का स्तवन करते हुए तथा पृथ्वी के उद्धार के कारण आनन्द मनाते हुए दिखाए गए हैं। थोड़ी दूर पर इसी दृश्य से लगे हुए दाएँ और बाएँ दोनों ओर एक और दृश्य अंकित है। यद्यपि दोनों ओर एकसा ही दृश्य है, परन्तु बाईं ओर का (चित्र ३९) कुछ विशेषता लिए है। सबसे ऊपर कोई देवांगना हाथ जोड़े आकाश में उड़ रही है। उसके नीचे छह स्त्रियों का गीत, वाद्य और नृत्य युक्त दृश्य दिखाया गया है। मध्य में एक स्त्री नृत्य कर रही है, शेष सब वीणा, वेणु, मृदंग, कांस्यताल बजा रही हैं। नीचे गंगा और यमुना अपने अपने वाहन मकर और कूर्म पर सवार हाथों में घट लिए अवतरण कर रही हैं। उनकी जल की धारा एक स्थल पर मिली है और फिर नीचे समुद्र (वरुण) हाथ में घट लिए हैं, जिसमें इन दोनों नदियों का जल मिल रहा है। वराह-मूर्ति के दाहिनी ओर गंगा, यमुना और समुद्र सब इसी प्रकार के हैं, केवल ऊपर नृत्य-गीत का दृश्य नहीं है।

देखना यह है कि क्या यह सब चित्रण निरर्थक, केवल कुछ पौराणिक घटनाओं का अंकन करने को हुआ है? क्या विष्णु के वराह रूप में पृथ्वी का उद्धार करने की कथा को मूर्त रूप देने भर के लिए कलाकार ने यह लोकोत्तर प्रतिमा समूह का निर्माण किया है। गुप्त सम्राटों का यह सर्वश्रेष्ठ कलाकार इससे कुछ अधिक अंकित करने के लिए नियत किया गया होगा, ऐसा निश्चित है। यदि कोई अन्य उद्देश्य न होता तो गंगा-यमुना और समुद्र के दोनों पार्श्ववर्ती चित्र वराह-मूर्ति सम्बद्ध नहीं किए जा सकते। डॉ० अग्रवाल ने इसे मध्यदेश का कलात्मक चित्रण माना है।* हमारे विनम्र मत में सम्राट् समुद्रगुप्त ने सम्पूर्ण भारतवर्ष की विजय यात्रा करके अश्वमेधादि यज्ञ किए और गंगा-यमुना की पवित्रता को सार्थक किया, उसीका अंकन उसके दिग्विजयी पुत्र ने इस वराह-मूर्ति के दोनों ओर कराया जो उसके निज के पराक्रम के चित्रण के लिए निर्मित की गई। चन्द्रगुप्त ने अपनी दिग्विजयों द्वारा भारत-धरा को अराजकता के समुद्र-तल से निकालकर उसका उद्धार किया अथवा यदि सम्राट् के सांधिविग्रहिक शाब वीरसेन के शब्दों में कहें तो 'अन्य राजाओं को दास बनाकर अपने पराक्रम रूप मूल्य से जिसने पृथ्वी को मोल लिया है' † और जिसके धर्माचरण के कारण पृथ्वी जिसपर अनुरक्त है, उस चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने आदिवराह के उस तेजोमय रूप का अंकन कराया जिसने अपने अतुल पराक्रम से पृथ्वी का उद्धार किया था।

स्वर्गीय काशीप्रसादजी जायसवाल ने इस दृश्य में पृथ्वी को ध्रुवस्वामिनी माना है और वराह को चन्द्रगुप्त। वे लिखते हैं, 'चन्द्रगुप्त के धर्म का और देश का उद्धार करने के उपलक्ष में उनके समसामयिक हिन्दुओं ने विदिशा के उदयगिरि पहाड़ में एक विष्णु-मूर्ति बनाई जो आज तक मौजूद है। विष्णु पृथ्वी की रक्षा वाराही तनु लेकर कर रहे हैं, वीरमुद्रा में खड़े अपने दन्तकोटि से एक सुन्दरी को उठाए हुए हैं और ऋषिगण स्तुति कर रहे हैं; सामने समुद्र है। यह मूर्ति गुहा-मन्दिर के बाहर है। गुहा-मन्दिर खाली है, उसके द्वार पर जय-विजय की प्रतिमाएँ अंकित हैं और आसपास गुप्तवंश के सिक्कोंवाली मूर्तियाँ दुर्गा और लक्ष्मी की हैं। इस वराह-मूर्ति को 'चन्द्रगुप्त-वराह' कहना चाहिए, क्योंकि यह मूर्ति विशाखदत्त के मुद्राराक्षसवाले भरतवाक्य का चित्रण है। चन्द्रगुप्त ने आर्यावर्त की रानी श्री ध्रुवदेवी का उद्धार शक-म्लेच्छों से किया था और भारत-भूमि का उद्धार म्लेच्छों से किया था। विशाखदत्त कई अर्थवाले श्लोक लिखते थे, यह 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक से सिद्ध है। उनका भरतवाक्य यह है—

> **वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावस्थितस्यानुरूपाम्।**
> **यस्य प्राग्दंतकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री॥**
> **म्लेच्छरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।**
> **स श्रीमद्बंधुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चंद्रगुप्तः॥**

इसमें कवि ने (अधुना) वर्तमान चन्द्रगुप्त (जिसका अर्थ विष्णु होता है, चन्द्र=स्वर्ण, चंद्रगुप्त=हिरण्यगर्भ) राजा की विष्णु से तुलना की। जैसे विष्णु ने इस पृथ्वी का उद्धार म्लेच्छ (असुर) से किया उसी प्रकार दन्त-कोटि शस्त्र से मारकर म्लेच्छ से चन्द्रगुप्त पार्थिव ने भारत-भूमि और ध्रुव (पृथ्वी) देवी का उद्धार किया। दोनों को रूप बदलना पड़ा था। चन्द्रगुप्त ने शक्ति (ध्रुवदेवी) का रूप पकड़ा और विष्णु ने शूकरी-तनु धारण किया अर्थात् रक्षण कार्य में (अवनविधौ) अयोग्य पर जरूरी रूप धारण किया।'‡

बेसनगर में प्राप्त हुई नृसिंह मूर्ति (चित्र ४० तथा ४१) भी गुप्तकालीन प्रतिमाओं में बहुत श्रेष्ठ है। परन्तु वह अत्यधिक टूटी हुई है, और इस कारण उसका मूल सौन्दर्य पूर्ण प्रकट नहीं है। दोनों हाथ और वैजयन्ती माला टूट गई है। मुखाकृति भी अस्पष्ट होगई है। वह मानवाकार से कुछ बड़ी है और उसके अंग अंग से सिंह-विक्रम प्रकट होता है। गले

*** नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ४८, संवत २०००, पृष्ठ ४३।**

† फ्लीट: गुप्त अभिलेख, पृष्ठ ३५।
"विक्रमावक्रयक्रीता दास्यन्यग्भूतपार्थि(वा).......................मानसंरक्ता-धर्म्म........................."

‡ गंगाप्रसाद मेहताकृत 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' की प्रस्तावना, पृष्ठ ३-४।

की राशिधारा के समान सफेद था, जो पश्चिम के इस अद्वितीय नगर में ऊँचा खड़ा और चमक रहा था।'‡ मन्दसौर का ध्वंस कल्पनातीत रूप में हुआ है। यह तो अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि कुछ प्रस्तरखण्ड इन लेखों को वहन किये मिल सके और कुछ मूर्तियाँ इधर उधर टूटी-अधटूटी मिल गई। अतः न तो उस गगनचुम्बी सूर्य-मन्दिर का पता है और न उसकी सूर्य-प्रतिमा का। दुर्भाग्य से शिलालेख में प्रतिमा का वर्णन भी नहीं है। ग्वालियर गढ़ पर भी किसी मात्रिचेट * ने मिहिरकुल हूण के शासन काल के १५वें वर्ष में एक सूर्य-मन्दिर का निर्माण किया था।

त्रिदेव के तीसरे देवता ब्रह्मा की दो मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं। बेसनगर में चतुर्मुख ब्रह्मा की भग्न मूर्ति तथा पवाया के पद्मासनासीन ब्रह्मा मूर्तिकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण न हो परन्तु मूर्ति-विज्ञान में इसका स्थान अवश्य है।

दुर्गा, शक्ति एवं मातृकाओं की मूर्तियाँ अधिक पूर्ण एवं प्रचुर संख्या में प्राप्त हुई हैं। गुप्तकाल तक शक्ति-पूजन पूर्ण विकास प्राप्त कर चुका था। पार्वती महिषमर्दिनी, सप्तमातृका एवं अष्टशक्ति की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियाँ मिली हैं।

इनमें सबमें प्राचीन मूर्ति महिषमर्दिनी की लगभग ग्यारह फीट ऊँची वह मूर्ति (चित्र ४७) है, जिसे कनिंघम ने तेलिन की मूर्ति कहे जाने का उल्लेख किया है।† स्मिथ ने इसे पूर्व मौर्यकालीन मूर्तियों में गिना, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। कनिंघम ने इसे ७ फीट ऊँचा लिखा है, परन्तु वास्तव में वह उससे बहुत ऊँची है। इसकी बनावट से यह निश्चित ही गुप्तकालीन है। माथे पर मुकुट बँधा हुआ है और त्रिनेत्र का चिह्न है। कानों में गोल कर्णफूल हैं। गले में दो अलंकार हैं। बाई ओर के हाथ टूटे हुए हैं। केवल कमर के ऊपर एक हाथ का पंजा शेष है। दायीं ओर तीन हाथ अक्षुण्ण बने हुए हैं, जिनके आयुध टूट गए हैं। कमर पर पेटी बंधी है और उसके ऊपर अलबटदार वस्त्र मथुरा एवं पवाया की नागराज की मूर्ति से मिलता है। पैरों के नीचे महिष का सिर है। महिष के दोनों ओर विपरीत दिशाओं में मुख किए दो सिंह हैं। बाई ओर के सिर के ऊपर एक पुरुष खड़ा है, जिसका सिर टूट गया है और जो सिर पर प्रहार कर रहा है। शिल्परत्न के अनुसार महिषमर्दिनी के दस भुजाएँ होना चाहिए, तीन नेत्र, जटामुकुट, सिर पर चन्द्रकला होना चाहिए। दाएँ हाथों में त्रिशूल, खंग, शक्त्यायुध, चक्र और धनुष होना चाहिए और बाएँ हाथों में पाश, अंकुश, खेटक, परशु तथा घंटिका होना चाहिए। उसके चरणों के पास महिष होना चाहिए जिसका सिर कटा हुआ हो, और असुर हो जिसे देवीने नाग-पाश में बाँध लिया हो और जिसके हाथ में खड्ग तथा ढाल हों। देवी का दायाँ पैर सिंह की पीठ पर हो और बायाँ महिष को छूता हुआ हो।‡

यह बेसनगर की विशाल प्रतिमा उपर्युक्त वर्णन से पूरा मेल नहीं खाती। परन्तु उदयगिरि की गुहा नं० ६ तथा १७ की महिषमर्दिनी की उभरी हुई मूर्तियाँ (चित्र ४८) इस शास्त्रीय वर्णन से अधिक मेल खाती हैं। इन मूर्तियों के १२ भुजाएँ हैं, और असुर पशु (महिष) के रूप में है।

शिव की अन्यतम शक्ति पार्वती की गुप्तकालीन मूर्तियों में तुमेन की सिंहवाहिनी पार्वती तथा पवाया की खंडित मृत्तिका-मूर्ति अधिक उल्लेखनीय हैं (चित्र ४९ तथा ५०)।

गुप्तकालीन सप्त-मातृकाओं की मूर्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़ोह और पठारी के बीच एक पहाड़िया में सप्त मातृकाओं की मूर्तियाँ चट्टान में खुदी हुई हैं। उनके नीचे गुप्त लिपि में एक १० पंक्ति का अभिलेख भी है, जो अब तक पूरा नहीं पढ़ा जा सका है। उसमें तिथि थी, जो नष्ट हो गई है, केवल 'शुक्लदिवसे त्रयोदश्यां' और 'भागवतो मातरः'

---

‡ फ्लीटः गुप्त अभिलेख, पृष्ठ ८१।

* फ्लीटः गुप्त अभिलेख, पृष्ठ १६२।

† आ० स० ई० भाग १०, पृष्ठ ३९-४०।

‡ गोपीनाथ रावः हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ ३४५-३४६।

तथा 'विषयेश्वर महाराज जयत्सेनस्य' शब्द स्पष्ट रूप से पढ़े गए हैं। श्री गर्दे ने इस लिपि को पाँचवीं शताब्दी का बतलाया है।* इससे हमें यहाँ सम्बन्ध नहीं है कि 'विषयेश्वर महाराज जयत्सेन' किस गुप्त सम्राट् के 'विषयेश्वर' थे, यहाँ हम केवल यह दिखलाना चाहते है कि प्रारंभिक गुप्तकाल में सप्तमातृकाओं की मूर्तियों का निर्माण होता था। बाग में भी गुप्तकालीन सप्त मातृकाओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उदयगिरि पर गुहा नं० ४ तथा ६ में अष्टशक्तियों की विशाल प्रतिमाएँ मिली हैं। गुहा नं० ४ के बगल में एक खुली गुहा में छह मूर्तियाँ सामने बनी हैं और एक दाहिनी ओर और एक बाईं ओर है। इसी प्रकार गुहा नं० ६ में है।

मूर्तिकला की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर सप्तमातृकाओं अथवा अष्टशक्तियों की मूर्तियाँ (चित्र ५१) बेसनगर में प्राप्त हुई हैं। इनके निर्माण में गुप्तकाल का मूर्ति-निर्माण-सौष्ठव पूर्ण प्रकाशित हुआ है। गुप्तकालीन केश-विन्यास इन मातृकाओं में प्रदर्शित हुआ है। यद्यपि यह अत्यन्त भग्न अवस्था में है, फिर भी इनके निर्माण की निकाई स्पष्ट प्रकट है। ग्वालियर के उत्तर में प्रायः ९ मील पर स्थित पारौली एवं वहाँ से ७ मील दूर पढ़ावली में गुप्तकालीन मन्दिर मिले हैं। पढ़ावली में एक छह भुजा देवी की इस प्रकार की एक मूर्ति मिली जो एक बालक को लिए है।†

गुप्तकाल में से शिव-परिवार में स्कन्द का बहुत महत्त्व था, ऐसा ज्ञात होता है। गुप्त सम्राटों द्वारा भी देव सेनापति को विशेष मान मिला है, जैसा कि 'स्कन्द'-गुप्त एवं 'कुमार'-गुप्त नामों से ही प्रकट होता है। इस काल की कुछ अत्यन्त सुन्दर 'स्कन्द' प्रतिमाएँ राज्य में प्राप्त हुई हैं। उदयगिरि की गुहा नं० ३ में दण्डधारी प्रतिमा सम्भवतः स्कन्द की ही है। गुहा नं० ६ पर बनी प्रतिमा (चित्र ५२) भी स्कन्द की ही है। इस मूर्ति की वेषभूषा अत्यन्त प्रभावशाली है और इसके देवसेनापतित्व की साक्षी है। बालब्रह्मचारी स्कन्द के काकपक्ष और उनका दण्ड स्कन्द की पहिचान के रूप में दिखाई देते हैं। तुमेन में प्राप्त स्कन्द प्रतिमा (चित्र ५३) यद्यपि छोटी है, किन्तु बहुत सुन्दर है। स्कन्द को गुप्तकालीन वेशभूषा धारण किए हुए दण्ड लिए दिखलाया गया है। पीछे मयूर बना हुआ है। इस मूर्ति के खड़े होने का ढंग देखकर स्कन्दगुप्त की स्वर्ण-मुद्राओं पर अंकित गुप्त सम्राट् की बंकिम मूर्ति का स्मरण हो आता है। कोटा से प्राप्त स्कन्द की मूर्ति, जो अब गूजरीमहल संग्रहालय में है, पिछले गुप्तकाल की अत्यन्त सुन्दर मूर्ति है।

गणेश की गुप्तकालीन अनेक महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। उदयगिरि में ही तीन गणेश मूर्तियाँ हैं। गुहा नं० ६ तथा १७ में दो गणेश मूर्तियाँ हैं और गुहा नं० ३ के दक्षिण की ओर एक और गणेश बने हुए हैं। इनमें गुहा नं० ६ के गणेश की आकृति भद्दीसी है (चित्र ५४)। शरीर पर कोई आभरण नहीं है और गणपति के कोई भी शास्त्रीय चिह्न अंकित नहीं हैं। इस कारण से हमारे मित्र डॉ० पाटील इसे गणेश की प्राचीनतम मूर्तियों में एक बतलाते हैं।‡ गुहा नं० १७ की गणेश-मूर्ति के सिर पर मुकुट और बढ़ गया है, अन्य बातों में वह गुहा नं० ६ की गणेश-मूर्ति से मिलती जुलती है। तीसरी गणेश मूर्ति पूर्णतः शास्त्रीय चिह्नोंयुक्त है। बैठे हुए गणेश चतुर्भुज हैं। दाहिने हाथों में से एक में परशु है, दूसरा टूट गया है। बाएँ हाथों में से ऊपर का हाथ अस्पष्ट रह गया है, नीचे के हाथ में मोदक है। दो छोटे छोटे पारिषद बने हैं और मूषक वाहन भी बना हुआ है।

गुप्तकालीन कुछ अन्य गणेश भी प्राप्त हैं, परन्तु उन सबका उल्लेख यहाँ व्यर्थ है।

गंगा और यमुना की मूर्ति के विकास के विषय में पहले लिखा जा चुका है। उक्त विवरण से ज्ञात होगा कि इनके स्पष्टतः दो प्रकार हैं। एक तो वे प्राचीनतर गंगा-मूर्तियाँ जो द्वार के ऊपर दोनों ओर एक ही वाहन (मकर) पर आरूढ़ अलंकरण के रूप में दिखाई गई हैं, जिनमें प्रधान बाग गुहा-समूह की गुहा नं० ४ के द्वार पर (चित्र ५५) तथा उदयगिरि की गुहा नं० ६ तथा १८ (चित्र ५६) के द्वार के ऊपर बनी हुई हैं। गुहा नं० १७ पर इनके केवल स्थान खाली पड़े हैं।

---

* ग्वालियर पुरातत्त्व रिपोर्ट, संवत् १९८२, पृष्ठ १२।

† आ० स० इ० भाग २७ पृष्ठ१०।

‡ देखिए विक्रम वाल्यूम में डॉ० पाटील का लेख।

इस श्रेणी में बेसनगर की बोस्टन के संग्रहालय में सुरक्षित गंगा की मूर्ति तथा गूजरीमहल-संग्रहालय में सुरक्षित मूर्ति-खण्ड हैं। यह मूलतः गुहा नं० १७ की हो सकती है। दूसरी श्रेणी में वे देवियाँ आती हैं जो आगे चलकर द्वार के नीचे एक ओर मकरवाहिनी गंगा और दूसरी ओर कूर्मवाहिनी यमुना के रूप में अंकित हुई हैं। इनमें मुख्य मन्दसौर की यमुना-मूर्ति, तुमेन की गंगा-मूर्ति, महुआ के शिव-मन्दिर के नीचे गंगा और यमुना की मूर्तियाँ हैं। आगे पूर्व मध्यकाल की चर्चा यहाँ आवश्यक नहीं है जबकि प्रत्येक मन्दिर के द्वार पर गंगा और यमुना अंकित होती ही थीं। उदाहरण के लिए, ग्वालियर के तेली के मन्दिर पर जहाँ भी द्वार अथवा द्वार का आकार है वहाँ एक ओर गंगा और दूसरी ओर यमुना मौजूद हैं।

मन्दिर-द्वारों से असम्बद्ध गंगा और यमुना का अपने पृथक् पृथक् वाहनों पर अंकन उदयगिरि की गुहा नं० ५ में वराह-मूर्ति के दोनों ओर हुआ है, इसका उल्लेख पहले हो चुका है।

बाग-गुहा-समूह की गुहा नं० ४ के ऊपर दोनों ओर सफल वृक्षों के नीचे मकरवाहिनी देवी हिन्दुओं की गुप्तकालीन गंगा की पूर्व रूप हैं, परन्तु वे बौद्ध अभिप्राय हैं और उनका मूल साँची तोरण की यक्षिणी ही हैं।* यही अभिप्राय उदयगिरि में हिन्दू गंगा के रूप में दिखाई देता है। इनमें बोस्टन-संग्रहालय में सुरक्षित मूर्ति (चित्र ५७) अधिक सुडौल एवं मनोहारी है। गंगा अत्यन्त लीलापूर्ण ढंग से मकर पर खड़ी हैं, एक शिशु इस मकर से खेल रहा है और एक परिचारक पास खड़ा है। शरीर पर अलंकार अत्यन्त थोड़े हैं, परन्तु वे बहुत सुरुचिपूर्ण हैं और मूर्ति की शोभा को बढ़ाते हैं। ऊपर सफल आम्र की डाली है, जिसे गंगा पकड़े हुए हैं। इस वृक्ष और स्त्री के सम्मिश्रण से प्राप्त अनुपम सौन्दर्य की तुलना किसी अंश तक गूजरीमहल संग्रहालय में एक कमरे के कोने में रखे मूर्ति खण्ड से की जा सकती है। उसमें भी एक देवी आम्र की डाली को पकड़े हुए है। यह मूर्ति भी पूर्ण होने की दशा में अत्यन्त भव्य होगी।

तुमेन की गंगा मूर्ति (चित्र ५८) पिछले गुप्तकाल की है। मकरवाहिनी गंगा हाथ में पूर्ण घट लिए हुए है और उसके पीछे एक परिचारिका छत्र लिए है और दूसरी डिब्बे जैसा कोई पात्र। मकर अत्यन्त रूढ़िबद्ध रूप में बना है। मूर्ति सुन्दर है; परन्तु अत्यन्त क्षत-विक्षत होगई है।

मन्दसौर में मिले द्वार का केवल बाईं ओर का तोरण मिला है। इस पर कूर्मवाहिनी यमुना बनी है। (चित्र ५९) इसमें यमुना के सिर के पास कुछ फूल एवं पत्तों की आकृति बनी है, परन्तु वह रूढ़िबद्ध है। शरीर कुछ मांसलसा है। अधोवस्त्र पिछले गुप्तकाल की कुछ मूर्तियों जैसा झीना दिखलाया गया है।

यक्ष-पूजा गुप्तकाल में भी जनता करती रही थी और अनेक यक्ष-मूर्तियाँ अन्य देवों के पारिषदों के रूप में बनती थीं। यह यक्ष-पूजा, ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन सभी धर्मों के अनुयायी करते थे। कुबेर की प्रतिमा के अंश बाग की गुहा नं० ४ में प्राप्त है।‡ गुप्तकाल की एक सुन्दर कुबेर-मूर्ति तुमेन में मिली है। उड़ते हुए गन्धर्वों की जोड़ी की जो मूर्ति (चित्र ६०) मन्दसौर में प्राप्त हुई है वह सौन्दर्य के कारण अद्वितीय है। श्री गर्दे का कथन है कि गन्धर्वयुग्म की इस मूर्ति को देखकर सर जॉन मार्शल ने कहा था कि इसके बदले में यदि इसकी तौल का सोना दिया जाए तो भी थोड़ा है। कलाकार ने जहाँ उड़ते हुए सिंह, घोड़े आदि की कल्पना की वहाँ एक ऐसी योनि की भी कल्पना की जो आकाशचारी है और देवताओं तथा महान् कार्य करनेवालों का यशोगान करती है। इस गन्धर्वयुग्म के मुकुट एवं अलंकार उस समय के राजा रानियों के मुकुटों के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अत्यन्त अनुपातपूर्ण एवं सुगढ़ अंगों में उड़ने का भाव भी बड़ी चतुराई से दिखलाया गया है। गन्धर्व के पीछे की ओर को मुड़े हुए पैर और आगे को बढ़ा हुआ सीना और शान्त मुख-मुद्रा उसके सहज भाव से आकाश-चारण को व्यक्त कर रहे हैं। गन्धर्व-रानी गन्धर्व से सटी हुई और सम्भवतः दाएँ हाथ से उसका सहारा लिए

*** इस प्रमाण के अनुसार यह अनुमान किया जा सकता है कि बाग गुहाओं का निर्माण प्रारंभिक गुप्तकाल में हुआ।**

‡ वर्णन के लिए देखिए बागकेव्स, पृष्ठ ४०।

हुए उसकी अनुगामिनी है। उसका उड़ता हुआ दुकूल जिसे वह बाएँ हाथ से थामे है, उड़ान की गति की व्यंजना कर रहा है।

(४) **बौद्ध मूर्तियाँ**—गुप्तकाल में हिन्दू धर्म के शैव एवं वैष्णव आदि सम्प्रदायों के पश्चात् जिस धर्म की मूर्तियों का अधिक महत्त्व है, वह है बौद्ध धर्म। कुषाणों के राज्य में गांधार और मथुरा में बुद्ध-मूर्तियाँ निर्माण करने की प्रवृत्ति की एक बाढ़सी आई थी। उसका अत्यन्त निखरा रूप दिखाई दिया गुप्तकाल में। सारनाथ की अलौकिक सौन्दर्यमयी बैठी हुई बुद्ध मूर्ति, मथुरा की खड़ी हुई मूर्ति और सुलतानगंज की धातुमूर्ति उनके सुन्दरतम उदाहरण हैं। इनकी समता करनेवाली मूर्तियाँ इस राज्य की सीमा में भले ही न मिलें, परन्तु जिन्हें अत्यन्त भव्य कहा जा सके, ऐसी अवश्य हैं। बाग में प्राप्त अत्यन्त विशाल एवं भव्य बुद्ध और बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ बौद्ध प्रतिमाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

बाग-गुहा-समूह में प्राप्त माहिष्मती के महाराज सुबन्धु के ताम्रपत्र के आधार पर यह सिद्ध है कि इस गुहा-समूह में से कुछ गुहा ईसा की चौथी शताब्दी में बनी और उसका नाम कलयन विहार था, तथा 'महाराज' सुबन्धु ने गुप्त संवत् १६७ मे दासिलकपल्ली नामक ग्राम इस विहार को दान दिया। इस विहार का निर्माता कोई 'दत्तटक'था।

नहपान के राज्यकाल में बनी नाशिक की गुहाओं में बुद्ध का प्रतीक केवल स्तूप ही मिलता है। अजण्टा में उसके स्थान पर व्याख्यानमुद्रा में बैठी हुई बुद्ध-मूर्ति स्थापित हुई। बाग की दो नम्बर की गुहा में इन दोनों के बीच की कड़ी मिलती है।* सामने स्तूप-मन्दिर है और स्तूप मन्दिर के आगे के अलिन्द में दोनों ओर बुद्ध प्रतिमाएँ हैं। इससे भी हमारी इस स्थापना की पुष्टि होती है कि बाग गुहाएँ गुप्तकाल के पश्चात्वर्ती नहीं हैं, जैसाकि अनेक विद्वानों का मत है।† इस गुहा नं० २ में स्तूप-मन्दिर के द्वार के दोनों ओर दो विशाल बोधिसत्त्वों की प्रतिमाएँ मेहराबदार स्थानों में बनी हुई हैं। बाईं ओर की ८ फीट ३ इञ्च ऊँची है (चित्र ६१) और उसके माथे पर ऊँचा जटा-मुकुट है जिसमें अभयमुद्रा में बैठी हुई छोटीसी बुद्ध मूर्ति बनी हुई है। इस छोटी बुद्ध मूर्ति के दोनों ओर माला लिए दो छोटे छोटे सिंह बने हैं। पीछे प्रभा-मण्डल जैसा कोई अलंकार है। गले में तीन हार हैं और जनेऊ भी पड़ा है। हाथों में भुजबन्द हैं और धोती के ऊपर सुन्दर कमरपट्टी है। पैरों के बीच में छोटीसी पटली है। दाहिना हाथ टूट गया है और बायाँ कमर पर रखा है। मूर्ति रूढ़िबद्ध रूप में अंकित कमल पर खड़ी है।

दायीं ओर की मूर्ति ८ फुट ९ इञ्च ऊँची है। (चित्र ६२) इसका निर्माण अधिक सरल हुआ है। जटाओं का जूड़ा सिर के ऊपर बँधा हुआ है। दो फूलों के गुच्छों के बीच में अभयमुद्रा में छोटीसी बुद्ध-प्रतिमा बनी हुई है। शरीर पर कोई अलंकार नहीं है। धोती की बनावट दूसरी प्रतिमा के समान ही है। पादपीठ का कमल पहली मूर्ति से अधिक सुन्दर है। दाएँ हाथ में सम्भवतः अक्षमाला और बाएँ हाथ में कमण्डल था।

आगे अलिन्द के दोनों ओर तीन तीन प्रतिमाओं के समूह बने हैं जिनमें बीच की प्रतिमाएँ बुद्ध की हैं और दोनों पार्श्व की बोधिसत्त्वों की हैं। दोनों समूह लगभग एकसे हैं (चित्र ६३ तथा ६४)।

दाहिनी ओर के समूह में मध्य की बुद्ध प्रतिमा १० फीट ४ इञ्च ऊँची है और कमलाकार पादपीठ पर खड़ी है। दाहिना हाथ वरद्मुद्रा में फैला हुआ है। बाएँ हाथ में दुकूल का छोर पकड़े हुए है। बुद्ध-प्रतिमा बड़ा वस्त्र इस प्रकार ओढ़े हुए दिखाई गई है कि दायाँ कंधा खुला हुआ है। वस्त्र की सिकुड़न लहरों द्वारा दिखलाई गई हैं। सिर पर घुंघराले बाल और महापुरुष का लक्षण उष्णीष है। बुद्ध के दाईं ओर का पारिषद ९ फीट ऊँचा है। वह दाहिने हाथ में चमर लिए है। बायाँ हाथ कुषाणकालीन प्रतिमाओं में प्राप्त अधोवस्त्र की गाँठ पर सधा हुआ है। माथे पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में

*** बाग केव्स, पृष्ठ २८-२९।**

† स्मिथः ए हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्टस इन इण्डिया एण्ड सीलोन, पृष्ठ १०९, राय कृष्णदास भारत की चित्रकला, पृष्ठ ३८।

आभूषण है और कंधे पर जनेऊ भी पड़ा हुआ है। बुद्ध के बाईं ओर का पारिषद ८ फीट ३ इञ्च ऊँचा है। इसके मुकुट नहीं है केवल जटा की गाँठ ऊपर लगी है। अन्य आभरण प्रायः पहले पारिषद से मिलते जुलते हैं। दाएँ हाथ में कमलपुष्प लिए हैं और बायाँ अधोवस्त्र की गाँठ पर रखा है।

दूसरी ओर का समूह प्रायः ऐसा ही है, परन्तु उनकी ऊँचाई कुछ कम है; बुद्ध ९ फीट ६ इञ्च हैं तथा दोनों पारिषद लगभग ७ फुट ऊँचे हैं।

डॉ० वोगल ने सारनाथ की बौद्ध मूर्तियों से तुलना करके यह स्थापना की है कि स्तूप-मन्दिर के तथा दोनों बौद्ध प्रतिमाओं के दाहिनी ओर की अधिक अलंकृत प्रतिमाएँ अवलोकितेश्वर की हैं, और बाईं ओर की सादा मूर्तियाँ मैत्रेय की हैं। *

बाग की गुहा नं० ४ में बुद्ध की धर्मचक्र प्रवर्तन की प्रतिमा बनी हुई थी। आज वह नष्ट हो चुकी है और केवल घुंघराले बालोंयुक्त बुद्ध के मस्तक का कुछ अंश तथा पारिषदों के हाथों के चमरों के अंश ऊपर की ओर बचे हैं और दो मृगों के बीच में धर्मचक्र नीचे बच रहा है। प्रतिमा के ऊपर के दो आकाशचारी गन्धर्व भी अभी बने हुए हैं।

कोटा में प्राप्त बुद्ध की धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बैठी हुई बुद्ध-प्रतिमा (चित्र ६५) गुप्तकाल की ही ज्ञात होती है। इसके हाथ और घुटने टूट गए हैं परन्तु इनके घुंघराले बाल एवं उष्णीष, बड़े बड़े कान एवं शान्त मुखमुद्रा इसकी उच्चकोटि की निर्माण कला प्रदर्शित करते हैं।

ग्यारसपुर का बौद्ध स्तूप और वहाँ की बुद्ध प्रतिमाएँ पिछले गुप्तकाल की कृतियाँ हैं। इसी समय में राजापुर का बौद्ध स्तूप (चित्र ६६) बना होगा। परन्तु इनमें बौद्ध अवशेषों के विस्तार के प्रमाण के अतिरिक्त ऐतिहासिक अथवा कला सम्बन्धी विशेषता कुछ नहीं है।

५. जैन मूर्तियाँ—ग्वालियर राज्य में जैन प्रतिमाएँ कला, संख्या आदि सभी दृष्टि से अद्वितीय हैं, परन्तु इनका अध्ययन एवं वर्गीकरण सबसे कम हुआ है। यहाँ के जैन समाज को इस दिशा में आगे कदम उठाना चाहिए। अस्तु।

जैन प्रतिमा-निर्माण का प्राचीनतम उल्लेख हमें उदयगिरि की गुहा नं० २० में मिलता है, जिसमें "प्रसिद्ध गुप्त-वंशीय श्री संयुक्त एवं गुण-सम्पन्न राजाओं के समृद्धिमान काल के १०६वें वर्ष (ई० स० ५२८) के कार्तिक कृष्णा ५ के शुभ दिन को शमदमयुक्त शंकर नामक व्यक्ति ने विस्तृत सर्प फणों से भयंकर (दिखनेवाली) जिन श्रेष्ठ पार्श्वनाथ की मूर्ति गुहाद्वार में बनवाई।"† इस गुहा में आज यह पार्श्वनाथ प्रतिमा नष्ट हो गई है, केवल सर्पफणों का छत्र शेष रह गया है।

गुप्तकालीन दूसरी जैन प्रतिमा बेसनगर में प्राप्त हुई थी और आज गूजरीमहल संग्रहालय में सुरक्षित है। (चित्र ६७) इस आजानबाहु तीर्थंकर-प्रतिमा की ऊँचाई लगभग ७ फीट है। चरण-चौकी के दोनों पारिषदों के मुख तथा प्रतिमा की हथेलिय टूट गई हैं और मुख भी अस्पष्ट है, फिर भी इसका भव्य सौन्दर्य स्पष्ट है। सिर के पीछे बहुत बड़ा प्रभा-मण्डल है जिसमें कमल तथा अन्य पुष्पों के अलंकरण हैं, दो गन्धर्व माला लिए सिर के दोनों ओर उड़ रहे हैं। गन्धर्वों के वस्त्राभरण केश आदि प्रतिमा के गुप्तकालीन होने के प्रमाण हैं। अत्यन्त सुगढ़ शरीर में हाथों को घुटनों के नीचे तक लम्बा दिखलाया गया है। चरणों के पास दो उपासक बैठे हैं, जिनके मुख टूट गए हैं।

६. द्वारपाल, मिथुन, आदि—ऊपर वर्णित धार्मिक प्रतिमाओं के पश्चात् अब आगे उन मूर्तियों को लेते हैं जिनमें गुप्तकालीन कलाकार ने समाज के साधारण मानव का अंकन किया है। इनमें सैनिकों का अंकन तो उदयगिरि की गुहा नं० ४, ६, ७, १७ तथा १८ के द्वारों के दोनों ओर अंकित द्वारपालों में हुआ है। खिलचीपुर, मन्दसौर में जो कुछ स्त्री

*** बागकेव्स, पृष्ठ ३६।**

† फ्लीटः गुप्त अभिलेख, पृष्ठ २५८।

पुरुष की उभरी हुई मूर्तियाँ (अर्धचित्र) मिली हैं वे उस समय के नागरिकों के सुन्दरतम चित्रण हैं। किसी धार्मिक मन्दिर से सम्बन्धित होते हुए भी पवाया का गीत-नृत्य का दृश्य तत्कालीन उत्फुल्ल एवं प्रसन्न कलामय सामाजिक जीवन की सजीव झाँकी है। उदयगिरि के गुप्तकालीन मन्दिर के उत्खनन के समय प्राप्त स्त्री-पुरुषों के सिर तत्कालीन केशविन्यास एवं वेशभूषा पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं (चित्र ६८)।

उदयगिरि के गुहाद्वारों पर बने हुए द्वारपालों में सबसे अधिक सुरक्षित गुहा नं० ६ के द्वार की मूर्तियाँ हैं। (चित्र ३६) इनके भारी भरकम केशकलाप, सुदृढ़ शरीर तथा विशालकाय फरसे उन्हें अत्यन्त भीषण तथा आतंकित करनेवाला रूप प्रदान करते हैं। उनकी धोती का पहनाव भी बहुत प्रभावशाली है तथा कमर पर ताड़ के पंखे जैसी कलगी एक विशेषता है।

खिलचीपुर के तोरण पर स्तम्भ स्त्री-पुरुष की मूर्ति अथवा मिथुन मूर्तिकला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण हैं (चित्र ६९)। मन्दिर द्वार पर इस स्त्री-पुरुष का युग्म में सात्विक श्रृंगार और प्रजनन के जिस स्वस्थ भाव का प्रदर्शन किया गया है, उसका अत्यन्त विकृत रूप हमें मध्यकालीन मन्दिरों में मिलता है। खजुराहो और (इस राज्य में ही) पढावली में इस पारिभाषिक मिथुन को अश्लील 'मैथुन' दृश्यों में परिवर्तित कर दिया है।

खिलचीपुर में प्राप्त द्वार तोरण का स्त्री-पुरुष युग्म (चित्र ७०) मूर्तिकला की दृष्टि से सुन्दर है। स्त्री और पुरुष दोनों का ही केशविन्यास अत्यन्त सुन्दर है। ज्ञात यह होता है कि उनकी रचना में मुक्ता एवं पुष्प दोनों की सहायता ली गई है। स्त्री और पुरुष दोनों गले में हार पहने हैं। भुजाओं पर, कलाई पर स्त्री और पुरुष भिन्न भिन्न प्रकार के अलंकार पहने हुए हैं। स्त्री. पैरों में भी कड़े पहने हुए हैं, पुरुष के पैरों में कोई अलंकार नहीं है। स्त्री और पुरुष के बीच में एक बालक भी है, जो घुटने के सहारे आधा खड़ा हुआ है। स्त्री अपने बाएँ हाथ में फल लिए बालक को दिखा रही है।

मन्दसौर में प्राप्त युग्म (चित्र ७१) अधिक कलापूर्ण है। पत्थर की अनगढ़ चौखट के बीच में यह कलाकृति बनी है। ऊपर पत्तों के गुच्छे बनाकर वृक्षका जैसा सौन्दर्य लाने का प्रयास है। इसमें खड़े होने का वह बंकिम ढंग दिखाई देता है जो आगे मध्यकाल की मूर्तियों में अत्यन्त रूढ़िबद्ध रूप में पाया जाता है। परन्तु इसके शरीर अत्यन्त कमनीय बने हैं। खिलचीपुर के युग्म की अपेक्षा इन पर आभरण कम हैं, गले में मोतियों की माला, बाहुओं पर दो दो कंगन और कलाइयों पर एक कड़ा है। दाहिने हाथ में स्त्री फूल लिए है। स्त्री का अधोवस्त्र खिलचीपुर की यमुना जैसा चुस्त और पारदर्शी है। पुरुष की धोती जाँघों के बीच तक है। एक वस्त्र कमर पर उसी प्रकार बँधा है जिस प्रकार पवाया के नागराज, बाग के बुद्ध अथवा खिलचीपुर के तोरण पर हैं। दोनों ओर एक एक बालक हैं।

मन्दसौर में मिली द्वारपालों (?) की मूर्तियों (चित्र ७२) की वेशभूषा ऊपर के मूर्ति समूह के पुरुष जैसी ही है, केवल सिर के बालों का विन्यास उदयगिरि के द्वारपालों से मिलता हुआ है। कुषाण मूर्तियों जैसा कमर का वस्त्र इनके भी बँधा है।

पवाया के मन्दिर तोरण पर अन्य पौराणिक आख्यानों के साथ एक कोने पर प्रायः दो फीट लम्बे तथा दो चौड़े प्रस्तर खण्ड पर एक गीत नृत्य का अनुपम दृश्य अंकित है (चित्र ७३।) दुर्भाग्य से इसका ऊपर का बायाँ कोना टूट गया है। इस दृश्य में एक स्त्री मध्य में खड़ी अत्यन्त सुन्दर भावभंगी में नृत्य कर रही है। स्तनों पर एक लम्बा वस्त्र बँधा हुआ है, जिसका किनारा एक ओर लटक रहा है। बाएँ हाथ में पोंहचे से कुहनी तक चूड़ियाँ भरी हुई हैं। दाहिने हाथ में सम्भवतः एक दो ही चूड़ियाँ हैं। कमर के नीचे अत्यन्त चुस्त धोती (या पजामा) पहनी हुई है, जिस पर दोनों ओर किंकणियों की झालरें लटक रही हैं। पैरों में सादा चूड़े हैं। कानों में झूमरदार कर्णाभरण हैं। यद्यपि इस स्त्री के चारों ओर नौ स्त्रियाँ विविध वाद्य बजाती हुई दिखाई गई हैं, परन्तु उनका प्रसाधन इतनी बारीकी एवं विस्तार से नहीं बतलाया गया है। ये वाद्य बजानेवाली स्त्रियाँ गद्दियों पर बैठी हैं। टूटे हुए कोने में एक स्त्री मूर्ति का केवल एक हाथ बच रहा है, शेष सब शरीर टूट गया है। वाद्यों में दो तो तारों के वाद्य हैं। दाहिनी ओर का वाद्य समुद्रगुप्त की मुद्रा पर अंकित वीणा के समान है। बाँयी ओर का वाद्य आज के वायोलिन की बनावट का है। एक स्त्री ढपली जैसा वाद्य बजा रही है। उसके पश्चात् एक स्त्री सम्भवतः पंखा अथवा चमरी लिए है। फिर एक स्त्री मंजीर बजा रही है। पुनः

एक स्त्री बिना वाद्य के है। इसके पश्चात् मृदंगवादिनी है। कोने की टूटी मूर्ति के बाद की स्त्री वेणु बजा रही है। बीच में दीपक जल रहा है। इन सबके केशविन्यास पृथक् पृथक् प्रकार के हैं, जिनका विवेचन आगे किया जाएगा।

इस प्रकार गीत-नृत्य का दृश्य ग्वालियर की सीमाओं में मेरे देखने में तीन स्थानों पर आया है। पहला मौर्यकालीन बेसनगर में प्राप्त बाड़ पर है, दूसरा उदयगिरि में है, और तीसरा पवाया में है। (चौथा बाग गुहा की भित्तियों पर चित्रित है, परन्तु वह इन सबसे माध्यम तथा विषय दोनों में भिन्न है।) इन सब दृश्यों में अनेक समानताएँ हैं। एक तो ये पूर्णत: स्त्रियों की मण्डलियाँ हैं, दूसरे इन सबके वाद्य भी समान हैं। उदयगिरि का स्त्रियों का गीत-नृत्य 'जन्म' से सम्बन्धित है, ऐसा डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है। उन्होंने लिखा है कि इस उत्सव को 'जातिमह' कहते थे। 'विशिष्ट जन्म-उत्सव के अंकन में संगीत का प्रदर्शन भारतीयकला की प्राचीन परम्परा थी।'* डॉ० अग्रवाल का मत उदयगिरि के दृश्य के सम्बन्ध में ठीक नहीं जँचता। बेसनगर का दृश्य बुद्ध-जन्म से सम्बन्धित हो सकता है; परन्तु उदयगिरि का दृश्य गंगा-यमुना के जन्म से सम्बन्धित न होकर उनके समुद्र के साथ विवाह से सम्बन्धित है। गंगा-यमुना को समुद्र की पत्नी माना भी है। पवाया का दृश्य किस 'जातिमह' अथवा विवाह से सम्बन्धित है, यह हमें ज्ञात नहीं क्योंकि यह किस मन्दिर का तोरण है, यह मालूम न हो सका।

गुप्तकाल के पूर्व कुषाणकाल में ही मन्दिरों अथवा राजमहलों को अलंकृत करने के लिए स्तम्भों के सहारे सुन्दर स्त्री मूर्तियाँ निर्मित होना प्रारंभ हो गया था। इसका सुन्दर उदाहरण कला-भवन काशी में सुरक्षित प्रसाधिका की मूर्ति है। इस प्रकार की कुछ मूर्तियाँ ग्वालियर-राज्य में भी प्राप्त हुई हैं। इनमें भेलसा संग्रहालय में रखी हुई हाथ जोड़े हुए स्त्री मूर्ति, तथा गूजरीमहल संग्रहालय की (मामौन एवं पढ़ावली में प्राप्त) दीपलक्ष्मी एवं धूपधारिणी प्रधान हैं (चित्र ७४ तथा ७५)। इनमें से कुछ पिछले गुप्तकाल की हैं, विशेषत: भेलसे की मूर्ति।

देवसमाज एवं मानवों के अतिरिक्त गुप्त कलाकार ने पशु-पक्षी, बेल-बूटे आदि की भी सुन्दर कृतियाँ बनाई हैं। कमल भारतीय मूर्तिकला का अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। यह देवताओं के प्रभामण्डल में, चरणचौकी में, द्वारों के अलंकरण में सब जगह पाया जाता है। पशुओं में सिंह देवताओं के वाहन, स्तम्भ शीर्ष एवं द्वारों के अलंकरण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। पक्षयुक्त सिंह भी गुप्तकाल में प्राप्त हुआ है। कमल और सिंह यथार्थवादी न होकर रूढ़िबद्धसा हो गया है। ऐसे सिंह के लिए पवाया का सपक्ष सिंह (चित्र ७६) एवं उदयगिरि की गुहा नं० ६ के द्वार के अलंकरण में प्रयुक्त सिंह विशेष दर्शनीय हैं।

घोड़ा, मछली, बन्दर, मोर आदि पशु-पक्षियों की मृण्मूर्तियों का वर्णन आगे किया जाएगा।

७. **मृण्मूर्तियाँ**—'मानसार' के अनुसार मूर्ति-निर्माण का एक माध्यम मृत्तिका भी है। मृत्तिका द्वारा जीवन के उपयोगी भांड-निर्माण की कला बहुत पुरानी है। इन्हीं उपयोगी वस्तुओं को सौन्दर्य प्रदान करने की मानव प्रवृत्ति सब स्थान में सब कालों में रही है। परन्तु केवल अलंकरण एवं क्रीड़ा के लिए मृण्मूर्तियाँ बनाने की प्रथा भी भारतभूमि में प्राग्-ऐतिहासिक काल से प्रचलित है, जैसा कि मोहन-जो-दड़ो तथा हड़प्पा पर प्राप्त मृण्मूर्तियों से सिद्ध है। उज्जैन तथा विदिशा में भी कुछ प्राचीन मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। परन्तु जो गुप्तकालीन मृण्मूर्तियाँ श्री गर्दे ने पवाया के उत्खनन में खोद निकाली हैं, वे तो सौन्दर्य एवं कला की दृष्टि से अद्वितीय हैं। इनको देखने से उन कारीगरों के चातुर्य पर आश्चर्य होता है जो मृत्तिका जैसे माध्यम से भी इतनी सुन्दर तथा भावपूर्ण मूर्तियों का निर्माण कर डालते थे।

ये मृण्मूर्तियाँ विभिन्न प्रकार के केशविन्यासवाली स्त्रियों की हैं, पुरुषों की हैं, देवियों की है तथा पशु-पक्षियों की हैं। उन सबका अंकन अत्यन्त मनोहर हुआ है।

मानव मूर्तियों में विशेषता यह है कि कुछ मूर्तियाँ हँसती हुई बनाई गई है, कुछ रोती हुईं। इस प्रकार मिट्टी के ठीकरों द्वारा भाव-प्रदर्शन का यह प्रयास अत्यन्त सफल तो है ही, आश्चर्यजनक भी है। स्त्रियों की कुछ मूर्तियाँ तो अत्यन्त मनोहारी हैं (चित्र ७७ से ८१)।

*** नागरी प्रचारिणी पत्रिका, संवत् २००० पृष्ठ ४६।**

स्त्रियों के केशविन्यास के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है कि वह विविध प्रकार का अत्यन्त सुरुचिपूर्ण होता था। गुप्तकाल में प्रसाधन-कला पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता था, ऐसा ज्ञात होता है। राजघाट (काशी) तथा अफगानिस्तान में प्राचीन 'कपिशा' के स्थान पर इसी प्रकार की विविध केश-कलाप की मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। राजघाट की मृण्मूर्तियों के केश-कलाप का वर्णन डॉ० वासुदेवशरण ने किया है।* और कपिशा की मृण्मूर्तियों के केश-कलाप के विषय में श्री राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है—"एक जगह (काबुल के संग्रहालय में) पचासों स्त्री मूर्तियों के सिर रखे थे। उनमें पचासों प्रकार के केशों को सजाया गया था, और कुछ सजाने के ढँग तो इतने आकर्षक और बारीक थे कि मोशिये मोनिए (फ्रेञ्च राजदूत) कह रहे थे कि इनके चरणों में बैठकर पैरिस की सुन्दरियाँ भी बाल का फैशन सीखने के लिए बड़े उल्लास से तैयार होंगी।†" पवाया की ये मृण्मूर्तियाँ इन दोनों स्थानों की मूर्तियों से श्रेष्ठ एवं सुन्दरतर हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसका कारण यह है कि प्राचीन पद्मावती उस समय का मुख्य सांस्कृतिक केन्द्र था।

इन मृण्मूर्तियों में देवताओं में एक चतुर्भुज ब्रह्मा की मूर्ति सुन्दर है तथा किसी सिंहवाहिनी देवी (पार्वती ?) का भी नीचे का भाग मिला है, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

सवारयुक्त तथा बिना सवार के घोड़े भी सुन्दर हैं (चित्र ८२)। बहुधा भारतीय कलाकार के प्रति यह आक्षेप रहा है कि वह हाथी का अंकन करने में अत्यन्त पटु है, परन्तु वह घोड़े का अंकन नहीं कर सकता। पवाया के ये मिट्टी के घोड़े इस स्थापना को मिथ्या सिद्ध करते हैं। इनका निर्माण अत्यन्त कुशलतापूर्वक हुआ है।

तोता, कपोत, मोर, मछली, वराह, वानर आदि पशु-पक्षियों की बहुत मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। गले में माला डाले हुए वानर की मूर्ति अत्यन्त विनोदपूर्ण है (चित्र ८३ तथा ८४)।

इन मृण्मूर्तियों का क्या उपयोग होता था, इस प्रश्न का उत्तर तो पवाया की और अधिक खुदाई होने पर ही दिया जा सकता है। सम्भव है उस समय के भवनों के अलंकरण में भी इनका उपयोग होता हो। यह प्रायः एक फुट लम्बी चौड़ी से लेकर एक दो इञ्च तक की प्राप्त हुई हैं।

८. **स्तम्भशीर्ष**—गुप्तकालीन मूर्तिकला पर विचार करते समय उनके समय के प्राप्त स्तम्भशीर्षों की मूर्तिकला पर प्रकाश डालना आवश्यक है। महान् सम्राट् अशोक ने विशाल प्रस्तर-स्तम्भ-निर्माण करने की जो प्रथा डाली वह कभी बन्द न हुई। मन्दिरों के गरुड़ध्वज के रूप में तथा विजय-स्तम्भों के रूप में वह चलती ही रही। हमारे राज्य में गुप्त-कालीन चार स्तम्भशीर्ष प्राप्त हुए हैं, (क) उदयगिरि का चार सिंहोंवाला, (ख) पवाया का दुहरी पुरुष-मूर्तिवाला (ग) सौंदनी पर यशोधर्मन के स्तम्भों पर पवाया के समान ही दुहरे पुरुषों सहित शीर्ष (घ) बेसनगर में प्राप्त स्तम्भ की सिंहो-युक्त चौकी।

(क) उदयगिरि में जो स्तम्भशीर्ष मिला है उसके नीचे उलटे कमल का या घंटा का आकार बना है, उसके ऊपर अलबटदार रस्सी का अलंकरण है तथा उसके ऊपर गोल चौकी है; इस चौकी पर चार केसरी बैठे हुए हैं (चित्र ८५)। इस गोल चौकी पर सूर्य तथा राशियों की उभरी हुई मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। गुप्तों ने मौर्यों के सिंहों को पुनः अपनाया पर साथ ही राशियों के पौराणिक रूपों का चित्रण कर उन्हें अपनी विशेषता से वेष्टित कर दिया। गुप्तकाल में हुए ज्योतिष के विकास की मानों ये राशियाँ साक्षीसी हैं। सिंहों के मुख कुछ टूट गए हैं फिर भी उनका सौन्दर्य दिखाई देता है। इस सिंह-शीर्ष के ऊपर भी कोई मूर्ति रही होगी यह इन सिंहों के बीच में बने हुए गड्ढे से स्पष्ट है।

(ख) तथा (ग)—एरण में प्राप्त बुधगुप्त के स्तम्भ के शीर्ष पर भी पीठ से पीठ लगाए दो पुरुषों की मूर्तियाँ हैं।‡ ठीक इसी प्रकार का एक स्तम्भ शीर्ष पवाया में मिला है तथा ऐसा ही सौन्दनी में भी प्राप्त हुआ है। पवाया के स्तम्भ

*** नागरी प्रचीणी पत्रिका, वर्ष ४५, पृष्ठ २१५-२२६।**

† सोवियत भूमि, पृष्ठ ७४७।

‡ वर्णन तथा चित्र के लिए देखिए आ० स० इ० भाग १०, पृष्ठ ८१।

शीर्ष में दोनों ओर सिरों के चारों ओर प्रभा-मण्डल है। एक ओर दोनों हाथ कमल पर रखे हुए हैं तथा दूसरी ओर एक हाथ अभय मुद्रा में उठा हुआ है (चित्र ८६ तथा ८७)। सौन्दनी का स्तम्भ-शीर्ष भी इसी प्रकार का है। परन्तु सौन्दनी के स्तम्भ-शीर्ष के नीचे के भाग में लगाई जानेवाली तीन मुखोंयुक्त सिंहों की चौकी अपनी विशेषता रखती है। ऐसे तीन सिंह साँची में प्राप्त हुए हैं।

(घ) बेसनगर में प्राप्त स्तम्भशीर्ष गुप्तकाल का विशिष्ट उदाहरण है। उक्त चौकी में चारों ओर के पार्श्वों में दो सिंहों के बीच एक वृक्ष का अलंकरण है (चित्र ८८)।

इस काल के मन्दिरों पर पाए गए कीचकों तथा कार्तिमुखों का भी मूर्तिकला में विशेष स्थान है। यही आगे अत्यधिक विकसित रूप में मध्यकालीन मन्दिर में प्रयुक्त दिखाई देते हैं।

पिछले अन्य प्रकरणों के समान गुप्तकालीन मूर्तियों पर से धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति पर हम न तो विस्तार भय से प्रकाश डाल ही सकते हैं और न इसे आवश्यक ही समझते हैं। यत्र-तत्र हम पीछे उसके विषय में लिख ही चुके हैं। स्व० डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने एक स्थल पर बहुत भावपूर्ण शब्दों में लिखा है—'गुप्तों का वर्णन लेखनी को पवित्र करता है।'*मेरा मत है कि गुप्तकाल की मूर्तिकला का वर्णन तो आत्मा और लेखनी दोनों को ही पवित्र करता है। यह सत्य है कि गुप्तों के ठीक बाद ही कुछ अत्यन्त सुन्दर मूर्तियों का निर्माण हुआ है परन्तु जो स्वस्थ, स्वाभिमानी एवं सुसंस्कृत समाज गुप्तकालीन मूर्तियों में झाँकता है वैसा फिर भारतभूमि पर कभी न आया, कब आएगा यह भगवान् जाने।

* मेहताकृत 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य' की प्रस्तावना, पृष्ठ ४।

२. बेसनगर में प्राप्त यक्षी-मूर्ति।

१. बेसनगर में प्राप्त यक्षी की मूर्ति।

३. परखम की यक्षमूर्ति।

५ व ६ बेसनगर में प्राप्त बौद्ध वेदिका के चित्र (दोनों पार्श्व)।

४. चामर ग्रहिणी, पटना।
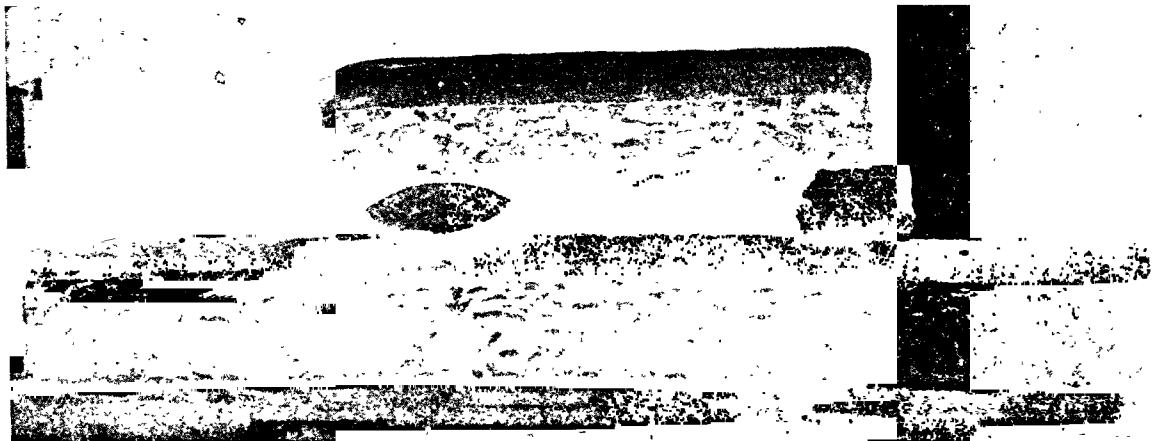
७. बेसनगर की वेदिका के स्तंभ तथा सूची।

९. स्तंभ-शीर्ष, लुहाँगी।

८. एकसिंह-स्तंभशीर्ष, उदयगिरि।

१३. विष्णु-मूर्ति बेसनगर।

१०. सवारयुक्त हाथी, बसनगर।

१४. हेलियोदोर स्तंभ खामबाबा , बेसनगर।
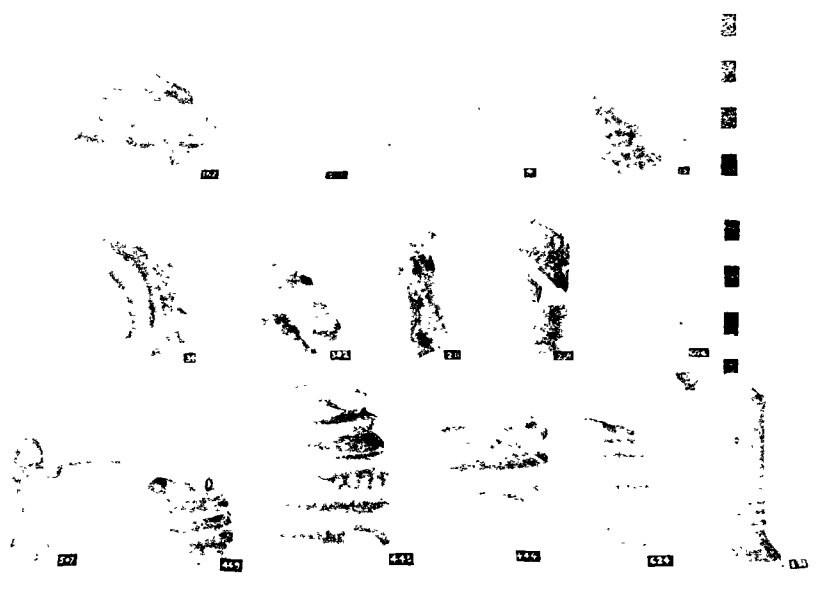
१५. स्तंभ-शीर्ष, बेसनगर।

११. मिट्टी के पात्र उज्जैन।

हाथीदाँत की वस्तुएँ, उज्जैन।
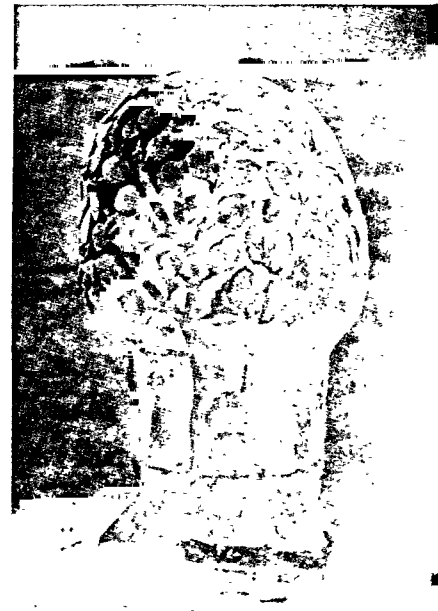
१६. कल्पवृक्ष स्तंभशीर्ष, बेसनगर।

१७. वृक्षका, साँची।

१८. बाग की मकरवाहिनी मूर्ति।
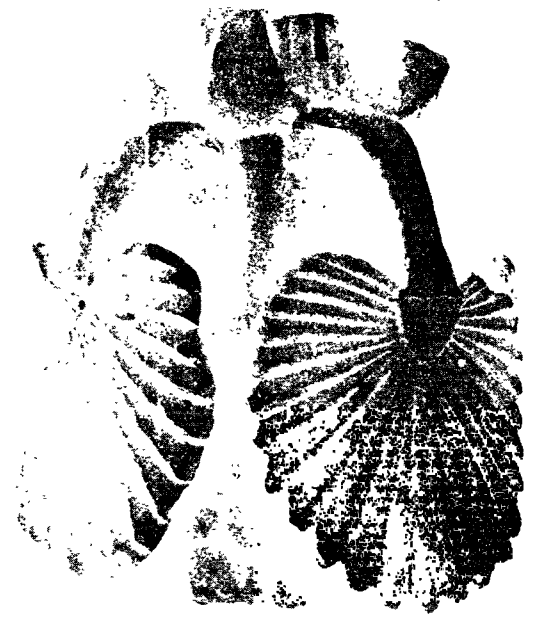
१९. ताड़-स्तंभशीर्ष, बेसनगर।

२०. ताड़-स्तंभशीर्ष, पवाया।

२१. नन्दी, पवाया।

२२. नन्दी, पवाया।
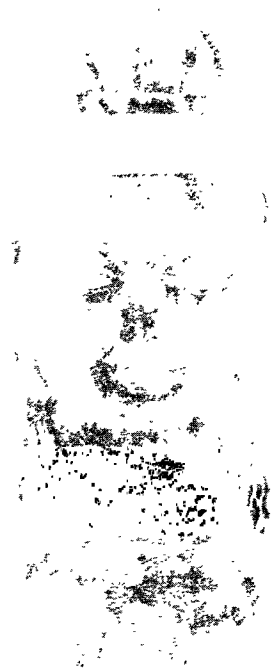
२३ एकमुख शिवलिंग, उदयगिरि।
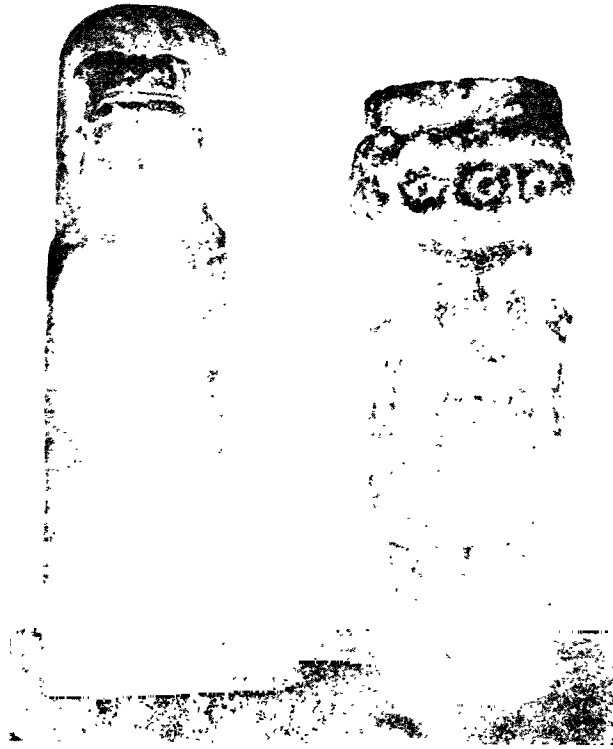
२४ शिवलिंग, बेसनगर।

२५ अष्टमुख शिवलिंग, मन्दसोर।
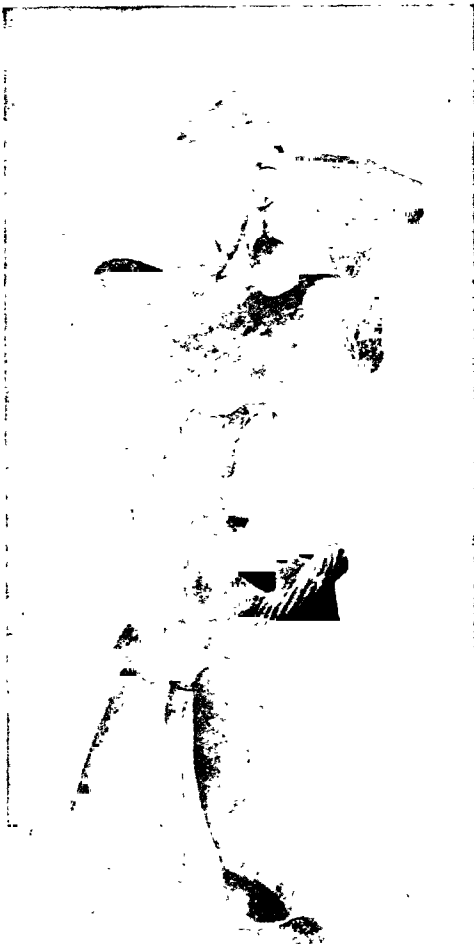
२७ नागराज, पवाया।
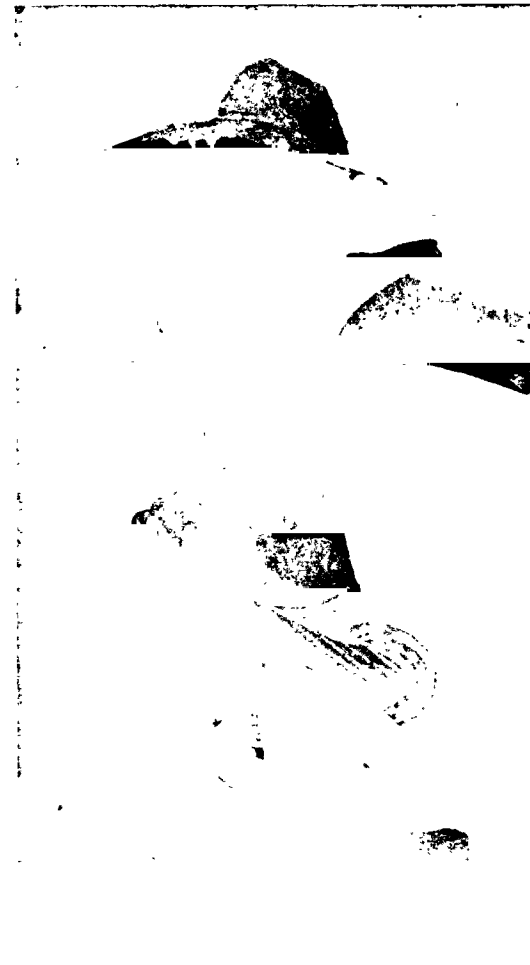
२८ नागराज (पीछे से)।

बुद्ध मूर्ति का खंड।
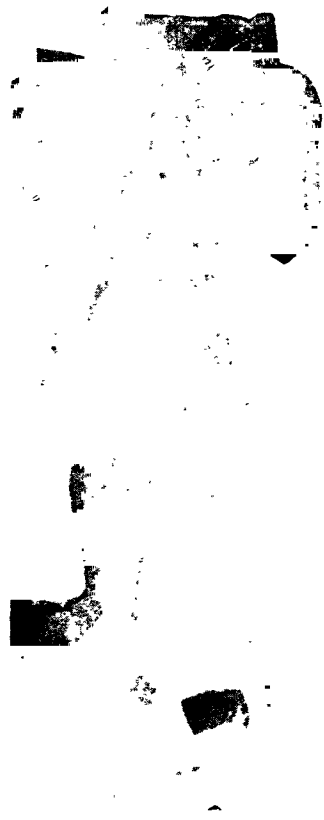
३० मणिभद्र यक्ष (पीछे से)।

३१ कुबेर, बेसनगर।

३० मणिभद्र यक्ष।
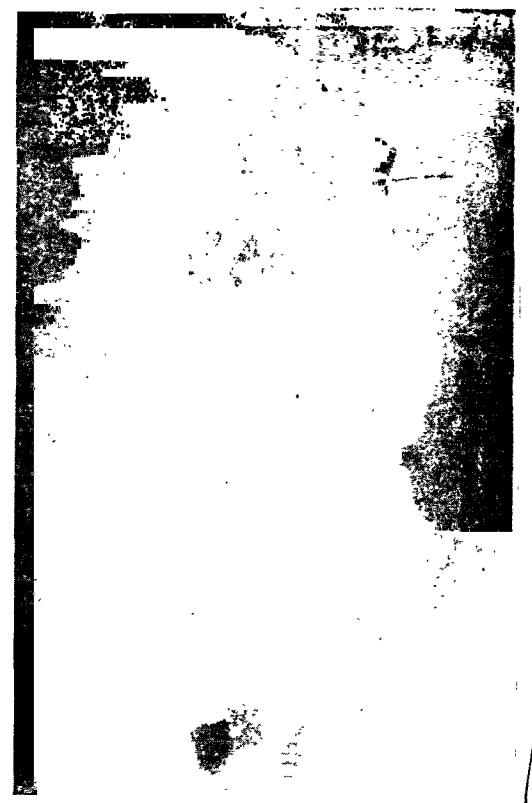
३२ तेरही का कुबेर।

३३ यक्ष, भेलसा।

३४ यक्षी, भेलसा।
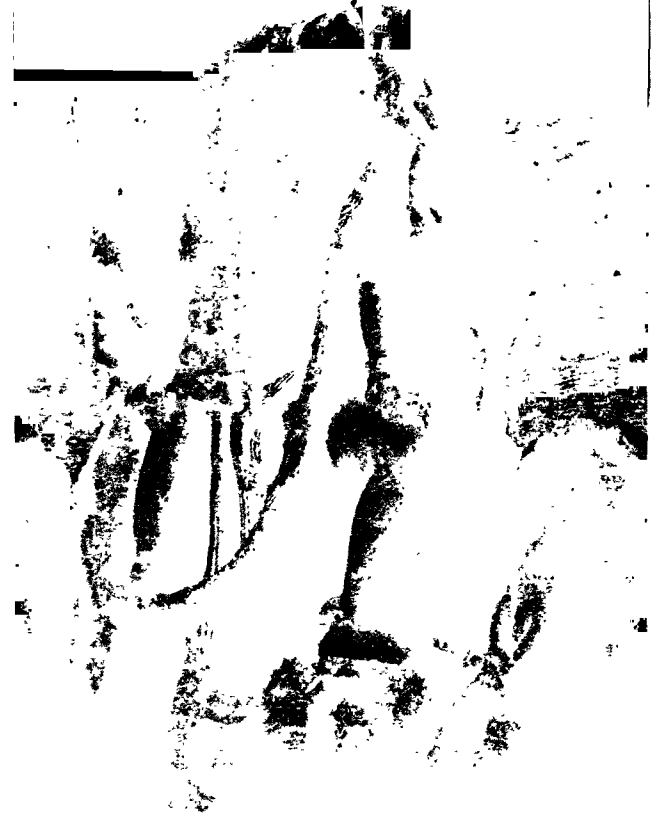
३५ शेषशायी विष्णु, उदयगिरि।

३६ विष्णु (दाहिनी ओर), उदयगिरि।

२६ नन्दी, उदयगिरि।

३७ बराह, उदयगिरि।

३७ विष्णु, पवाया।

४२ बालि और वामन, पवाया।

४० नृसिह-मूर्ति, बेसनगर।

४३ शिवमूर्ति, मन्दसोर।

४१ नृसिंह मूर्ति (दूसरी ओर से)।
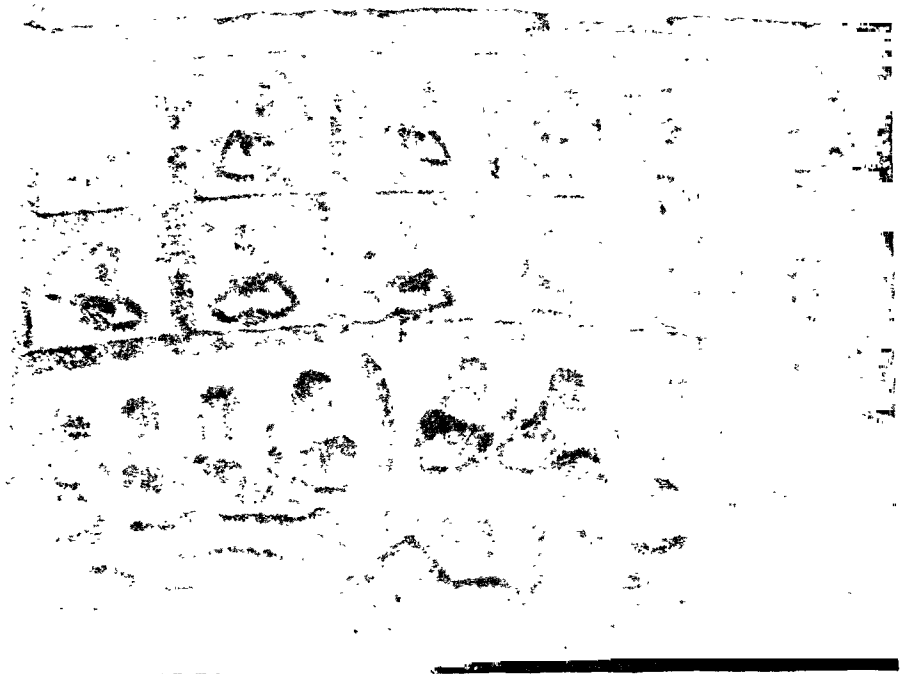
४४ ताण्डव शिव, उज्जैन।

४५ शिव, बडोह।

४६ शिव, तुमेन।

४७ महिषमर्दिनी, बेसनगर।

४९ पार्वती तुमेन।

५१ सप्तमातृकाएँ, बेसनगर।

५३ स्कंद, तुमेन।

५२ स्कंद, उदयगिरि।
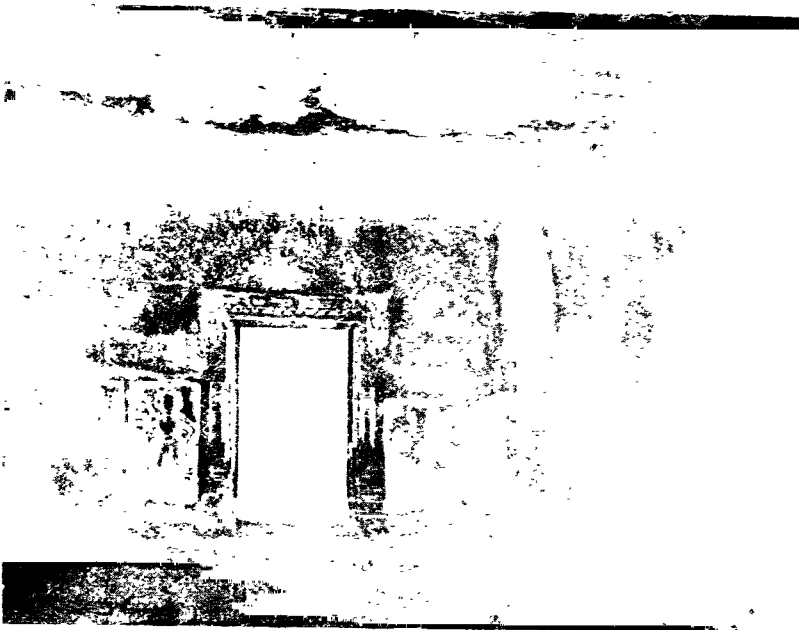
४८ उदयगिरि, गुहा नं. ६ का द्वार, विस्तार से।

६८ उदयगिरि, गुहा नं. ५ व ६ के द्वार।
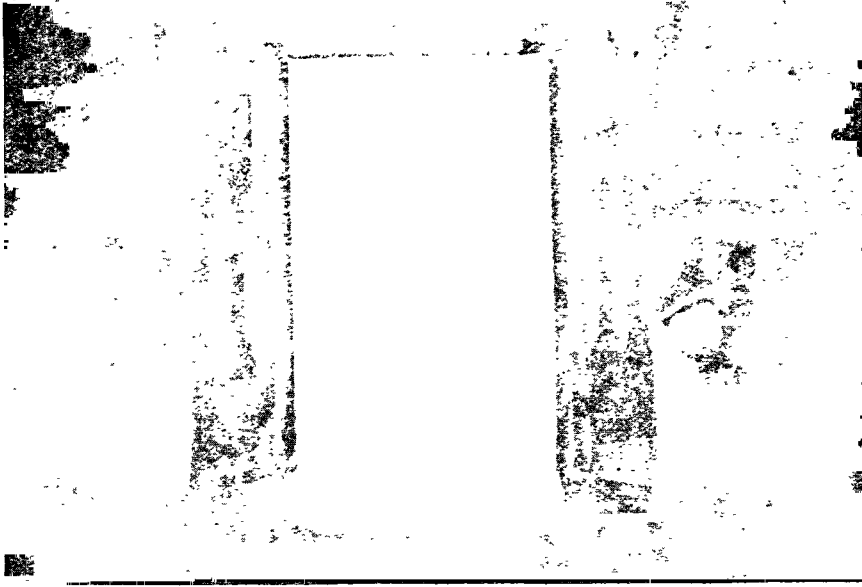
५६ द्वार पर मकरवाहिनी देवी, उदयगिरि।

५७ गंगा, बेसनगर।

३९ गंगा-यमुना-संगम उदयगिरि।
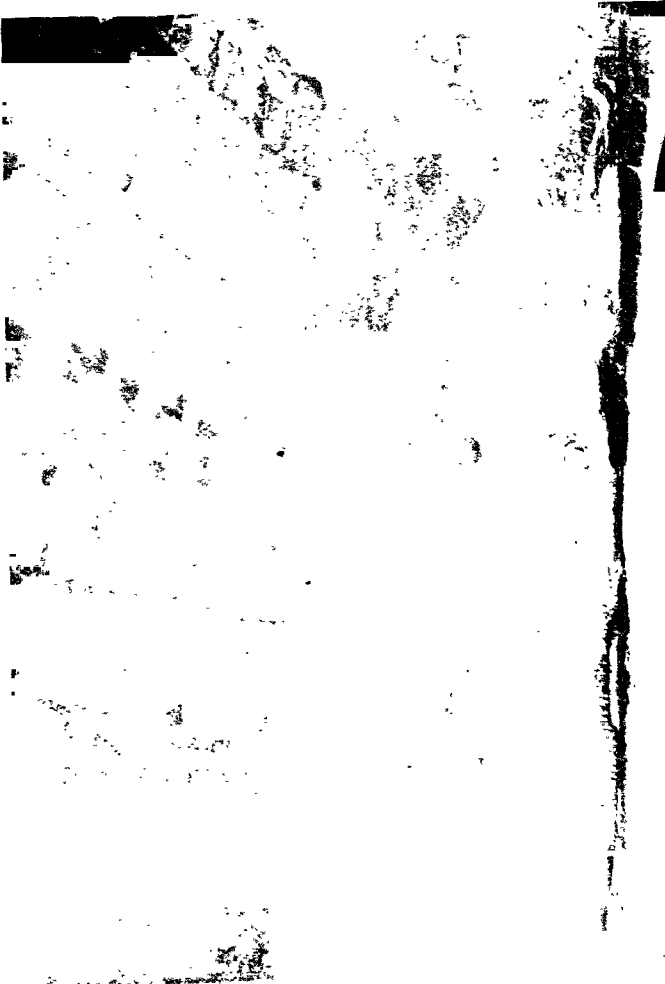
५९ यमुना, मन्दसौर।

६३ बुद्ध एवं बोधिसत्त्व, बाग।

६५ बुद्ध, कोटा।

६७ तीर्थंकर, बेसनगर।

६४ बुद्ध एवं बोधिसत्त्व, बाग।

६० आकाशचारी युग्म, मन्दसौर।
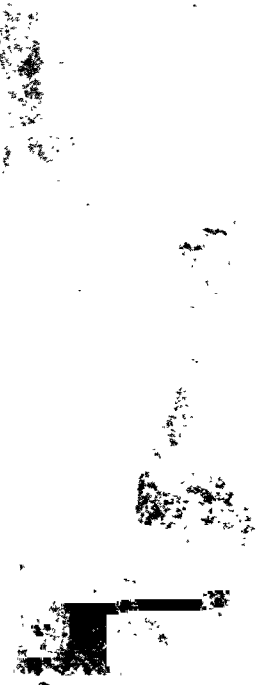
५४ गणेश, उदयगिरि।

६६ बौद्ध स्तूप, राजापुर।

६८ दीपलक्ष्मी, मामौन।
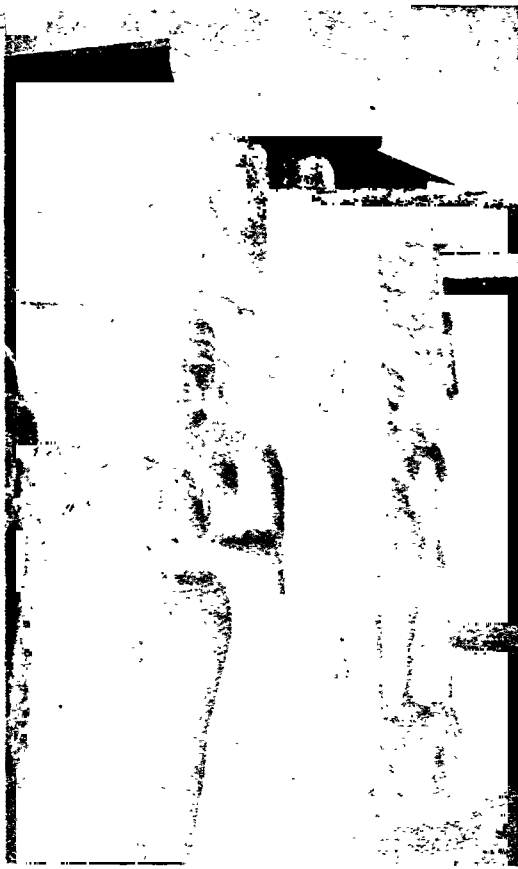
७५ धूपधारिणी, भेलसा।

६६ नृत्य-गीत, पवाया।

६४ मिथुन, मन्दसौर।

६९ युग्म, खिलचीपुर।

माता और शिशु मन्दसौर।

७८ व ७९

दो सिर, पवाया।
घोड़ा, पवाया।

८३ पशु-पक्षी, पवाया।

मृण्मूर्तियाँ।
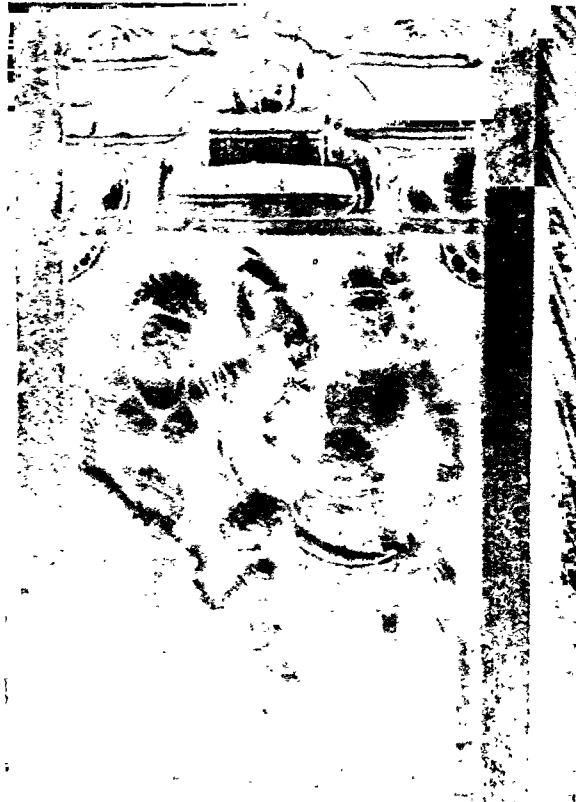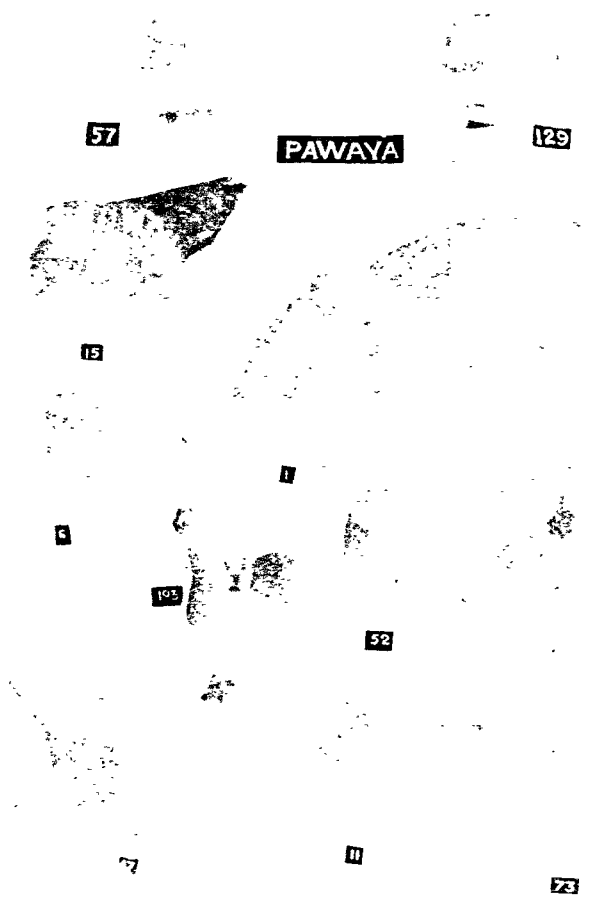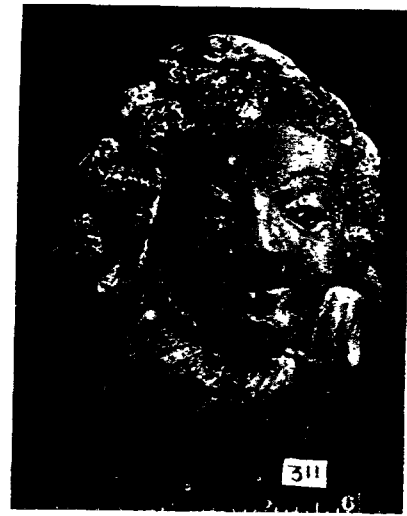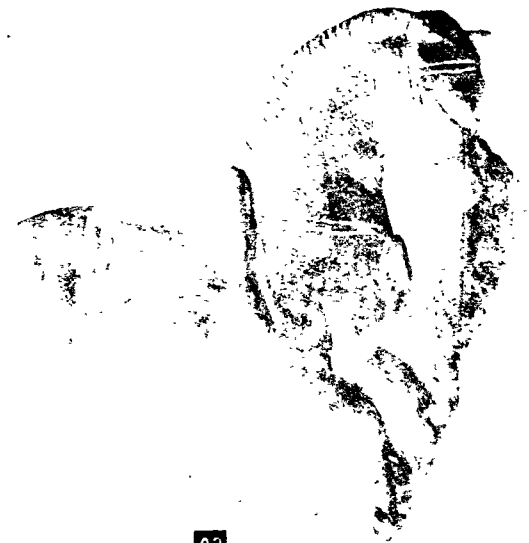
७७ हँसते हुए सिर, पवाया।

८४ पशु-पक्षी,पवाया।

८६ स्तंभशीर्ष, पवाया।

८७ स्तंभशीर्ष, पवाया (दूसरी ओर)।
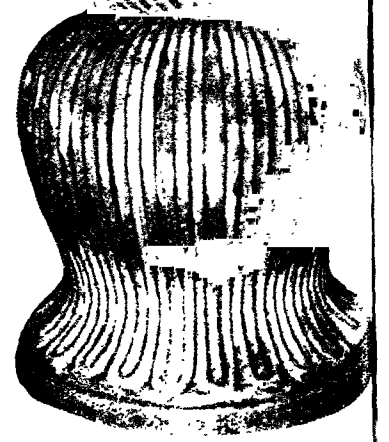
८५ स्तंभशीर्ष, उदयगिरि।

७० सपक्ष सिंह पवाया।

८८ स्तंभशीर्ष, बेसनगर।